मनुष्य जीवन की उपयोगिता

OR

THE ECONOMY OF HUMAN LIFE

BY

AN OLD CHINESE WRITER
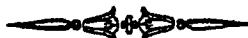
अनुवादक

बाबू केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रिन्सिपल अग्रवाल विद्यालय इण्टर मीडियेट कालेज

प्रयाग

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग ।

छठवाँ सं०
१५०० | मई
१९३८ | मूल्य ॥=)

प्रकाशक—

केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला,

दारागंज, प्रयाग

मुद्रक

श्रीरघुनाथप्रसाद वर्मा,

नागरी प्रेस, दारागंज

प्रयाग।

PREFACE

It is a pleasure to introduce a book like this to the Public in general and to students in particular. It is at once a book on ethics, religion, philosophy, sociology and what not. In fact, it is a universal hand-book wherein one will find a sure and easy way to success in life and thereafter—no conflict of ideals, no dissensions of principles.

The book of which this is a translation is entitled '*the economy of human life,*' and has been very appropriately translated by the writer into 'मनुष्य जीवन की उपयोगिता'। We are so much careful about our material advancement and waste ourselves in studying the problems of conomics either to gain a parchment or to crease the wealth of our nation or country. Both these ideals are far below the Hindu ideal of a peaceful or happy life. We find many a learned head who have failed in life for want of certain knowledge of things indispensable for success in life. The book collects such necessaries and presents them to-day to our students, for them to *read*, *mark*, *learn* and *digest*.

Wouldst thou learn to die nobly? Let thy vices die before thee.

DARAGANJ HIGH SCHOOL,
Allahabad.
10th April, 1919.

HARI RAM JHA

छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग की
अनुपम पुस्तकें

१—ईश्वरीय-बोध—परमहंस स्वामी रामकृष्ण जी के उपदेश भारत मे ही नही, संसार भर मे प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के उपदेशों का यह संग्रह है। प्रत्येक उपदेश पढ़ते समय ऐसा मालूम होता है मानो कोई कहानी पढ़ रहे है। परिवर्द्धित संस्करण का मूल्य सिर्फ ।॥)

२—सफलता की कुञ्जी—अमेरिका, जापान आदि देश मे वेदान्त का डंका पीटने वाले स्वामी रामतीर्थ के Secret of Success नामक अपूर्व निबन्ध का अनुवाद है। मूल्य ।)

३—मनुष्य जीवन की उपयोगिता—आपके हाथ मे है मूल्य ॥=)

४—भारत के दशरत्न—यह जीवनियो का संग्रह है। इसमे भीष्म पितामह, श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिंह, समर्थ गुरुरामदास श्रीशिवाजी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ के जीवन-चरित बड़ी खूबी के साथ लिखे गये हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य ॥)

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है—अपने विषय की भारत भर में एक ही पुस्तक है। इसने लाखों युवकों को पतन के गड्ढे से निकाल कर उनका उद्धार किया है। मू० ।॥)

६—वीर राजपूत—अप्राप्य मू० १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें—को पढ़कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखो का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। मूल्य १)

८—वैज्ञानिक कहानियाँ—महात्मा टाल्स्टाय लिखित वैज्ञानिक कहानियाँ, विज्ञान की शिक्षा देनेवाली तथा मनोरंजक पुस्तक मूल्य ।)

९—वीरों की सच्ची कहानियाँ—यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है यदि आप वीर और बहादुर बनना चाहते हैं, तो इसे पढ़िये ! इसमें अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरता-पूर्ण यशगाथाये पढ़ कर आपका हृदय फड़क उठेगा। मूल्य केवल ।।=)

१०—आहुतियाँ—यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश और धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु का आवाहन करते हैं ? उनकी आत्माये क्यों इतनी प्रबल हो जाती हैं ? वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढ़ते हैं ? इत्यादि दिल फड़काने वाली कहानियाँ पढ़नी हों तो "आहुतियाँ" आज ही मँगा लीजिये। मूल्य केवल ।।।)

११—पढ़ो और हँसो—विषय जानने के लिये पुस्तक का नाम ही काफी है। एक एक लाइन पढ़िये और लोट-पोट होते जाइये। आप पुस्तक अलग अकेले में पढ़ेंगे, पर दूसरे लोग समझेंगे कि आज किससे यह कहकहा हो रहा है । पुस्तक की

तारीफ यह है कि पूरी मनोरंजक होते हुए भी अश्लीलता का कहीं ना म नहीं। मूल्य ॥)

१२—मनुष्य शरीर की श्रेष्ठता—मनुष्य के शरीर के अंगों और उनके कार्य इस पुस्तक मे बतलाये गये हैं। इसके पढ़ने से आपको पता चलेगा कि हम अपनी असावधानी, तथा अपनी अनियमित रहन सहन से शरीर के अंगो को किस प्रकार विकृत कर डालते हैं। मूल्य ।=)

१३—एकान्तवास—अप्राप्य मूल्य ॥।)

१४—पृथ्वी के अन्वेषण की कथायें—अप्राप्य १)

१५—फल उनके गुण तथा उपयोग—पुस्तक का विषय नाम ही से प्रगट है। अभी तक इस विषय पर हिन्दी में क्या भारत की किसी भाषा मे भी कोई पुस्तक प्रकाशित नही हुई। इसी कमी को दूर करने के लिये बड़ी खोज के साथ यह पुस्तक लिखी गई है। मूल्य केवल १।)

१६—स्वास्थ्य और व्यायाम—यह अपने ढंग की हिन्दी मे एक ही पुस्तक है। लेखक ने अपने निज के अनुभव तथा संसार-प्रसिद्ध पहलवान सैंडो, मूलर तथा प्रो० राममूर्ति के अनुभवो के आधार पर लिखा है। इसमें लड़को और स्त्रियों के उपयुक्त भी व्यायाम बतलाये गये हैं जिससे व्यायाम करने मे सहूलियत हो जाती है। मूल्य १॥)

१७—धर्मपथ—प्रस्तुत पुस्तक मे महात्मा गांधी के ईश्वर, धर्म तथा नीति सम्बन्धी लेखो का संग्रह किया गया है जिन्हे उन्होंने समय समय पर लिखे है। उनके धार्मिक विचारों

से परिचित होना प्रत्येक धर्मावलम्बी का परम कर्त्तव्य है। मूल्य ।||)

१८—स्वास्थ्य और जलचिकित्सा—जलचिकित्सा के लाभो को सब लोगों ने एक स्वर से स्वीकार किया है। इस विषय पर जनसाधारण के लिये कोई उपयोगी पुस्तक न थी। प्रस्तुत पुस्तक सब के लिये बहुत उपयोगी है। मूल्य १||)

१९—बौद्ध कहानियाँ—महात्मा बुद्ध का जीवन और उपदेश कितने महत्वपूर्ण, पवित्र और चरित्र-निर्माण मे सहायक हैं, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं। इस पुस्तक मे उन्हीं महात्मा के जीवन के उपदेश कहानियो के रूप में दिये गये हैं। सचित्र पुस्तक का मूल्य १) है।

२ —भाग्य-निर्माण—यह पुस्तक विशेषकर नवयुवकों को लक्ष्य करके लिखी गई है। इस पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ के पढ़ने से नवयुवकों मे उत्साह, स्फूर्ति तथा नव जीवन का संचार होगा। इस पुस्तक के लेखक है हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान तथा जयपुर हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज ठाकुर कल्याणसिंह जी बी० ए०। सुन्दर जिल्द से युक्त पुस्तक का मूल्य १|||) है।

२१—वेदान्त धर्म—इसमे देश-विदेश मे वेदान्त का झंडा फहराने वाले स्वामी विवेकानन्द के भारतवर्ष में वेदान्त पर दिये हुये भाषणों का संग्रह है। ये वे ही व्याख्यान हैं, जिनके प्रत्येक शब्द मे जादू का सा असर है। पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो उनका प्रत्यक्ष भाषण सुन रहे हों आध्यात्मिक विषयों की रुचि रखने वालों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। मूल्य १।)

२२—पौराणिक महापुरुष—आजकल हमारे बच्चे

त्रों में विदेशी महापुरुष के ही चरित पढ़ते हैं। परिणाम यह है कि उन पर विदेशी आदर्शों की छाप पड़ जाती है, अपने भारतीय संस्कृति और धर्म से दूर हो जाते हैं। इस क मे हरिश्चन्द, शिवि, दधीच आदि महापुरुषों को जीवन ये संक्षेप मे दी गई हैं जिन्होंने सत्य, दया धर्म के लिये नी आहुति दे दी थी। मू० ॥)

२३—मेरी तिब्बत यात्रा—इसके लेखक भारतीय तत्व के अन्वेषक त्रिपिटिकाचार्य राहुल सांकृत्यायन हैं। वक ने अभी हाल ही मे तिब्बत की यात्रा की थी। इस पुस्तक मे ब्बत के अनोखे रीति रिवाज, वहाँ की रहन-सहन तथा धार्मिक, माजिक रूढ़ियो पर काफी प्रकाश डाला गया है। मू० १॥) ·

२४—अहिंसाव्रत—ले० महात्मा गांधी है जो अहिसा को परम मानते हैं। इस पुस्तक में उन सब लेखों का संग्रह किया गया जिन्हें महात्मा जी ने समय २ पर लिख कर पाठकों की शंकाओं, की उलझनों को दूर किया है। मू० ॥)

२५—दूध ही अमृत है—दूध की उपयोगिता को कौन प्राणी कार न करेगा। जब बच्चा जन्म लेता है, दूध ही द्वारा उसकी जीवन ा होती है। परन्तु हिन्दी में कोई ऐसी पुस्तक न थी, जिसमें ध के पोषक तत्वों, इसके पीने से लाभ तथा इससे क्या २ वस्तुयें यार हो सकती हैं, आदि बातों का वर्णन हो। इसी कमी को दूर ने के लिये इस पुस्तक की रचना की गई है। मू० १॥) सजिल्द २)

२६—पुण्यस्मृतियाँ—ग्रन्थ मे महात्मा गांधी ने महात्मा लस्टाय, लोकमान्य तिलक, महामना गोखले, सुकरात, देशबन्धुदास, ाला लाजपत राय आदि देशी तथा विदेशी महापुरुषों के प्रति द्धांजलियाँ अर्पित की हैं। इस ग्रन्थरत्न के सम्बन्ध मे अधिक

लिखना व्यर्थ है, जब स्वयं महात्मा जी की पावन लेखनी से म॰
की पावनगाथा लिखी गई हैं। मू० ॥।)

२७—बुद्ध और उनके अनुचर—इसके लेखक बौद्ध-भिक्षु आनन्द कौसल्यायन हैं। इस पुस्तक में महात्मा और उनके अनुयायी सारिपुत्र, महेन्द्र, बुद्धघोष, कुमारजीव भिक्षुओं की जीवन-कथायें सुन्दर और सजीव शैली में लिखी गई हैं महापुरुषों के सम्बंध में चित्र भी दिये गये हैं। मू० १)

साहित्य सरोजमाला की पुस्तकें:—

१—पतिता की साधना—इस उपन्यास का कथ
बिल्कुल नये ढंग का है जो अभी तक हिन्दी के किसी उप॰
में नहीं मिल सकता। इसकी अत्यन्त रोचकता और अ
रचना-प्रणाली देखकर पाठकों का कुतूहल इतना बढ़ जाता है कि
समाप्त किये बिना किसी काम में जी लगना तो दूर, खाना
तक दुर्लभ हो जाता है। मू० २)

२—अवध की नवाबी—यह एक ऐतिहासिक उप॰
है। इसमें लखनऊ के घोर विलासिता में मग्न नवाब की ए
लीला, उनका प्रजा-पीड़न का रोमांचकारी वर्णन है। मू० :

३—रत्नहार—हिन्दी के प्रसिद्ध कहानी लेखक तथा पत्रों के भूतपूर्व सम्पादक पं० ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल' की कहानियों का यह संग्रह है। निर्मल जी की कहानियाँ कितनी प्रद, सरस और सामयिक होती हैं, यह पाठकों से छिपा न॰ कहानियाँ केवल कल्पना प्रसूत नहीं हैं, बल्कि सच्ची घटना अवलम्बित हैं, इनसे शिक्षा और मनोरंजन दोनों प्राप्त होते कोई भी इन कहानियों को निस्संकोच पढ़ सकता है। मू० १॥)

भूमिका

(प्रथम संस्करण से)

जिस पुस्तक को १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पाश्चात्य देशों में इतनी सर्वप्रियता मिले व जिस पुस्तक के उपदेशामृत पान करने से फ्रेन्च, जर्मन, इटैलियन और अङ्गरेज़ों के मन इतने शुद्ध और पवित्र बन जायँ, उस पुस्तक का हिन्दी में नाम तक न सुनाई पड़े, यह कितने शोक और आश्चर्य की बात है। पहले पहल यह पुस्तक एक चीनी विद्वान् की दृष्टि में पड़ी। उसने उसका अनुवाद चीनी भाषा में किया। तदनन्तर तत्कालीन चीन देश निवासी एक अङ्गरेज़ विद्वान् ने उसे देखा और उसने उसका अनुवाद अङ्गरेज़ी भाषा में किया। फिर उसी के द्वारा यह पुस्तक प्रथम-प्रथम सन् १७५१ ई० में इंगलैण्ड देश में प्रसिद्ध हुई।

हम भी अनुवाद करके कदाचित् हिन्दी संसार में इस अभाव की पूर्ति न कर सकते यदि हमारी पाठशाला के सुयोग्य हेड मास्टर हरीराम जी झा अङ्गरेज़ी पुस्तक देकर उसके अनुवाद करने का प्रोत्साहन हमें न देते। वस्तुतः प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशित होने का अधिकांश श्रेय उन्हीं को मिलना चाहिये।

मूल ग्रन्थ किस भाषा में लिखा गया, किस समय लिखा गया, कहाँ लिखा गया, और किसने लिखा इसका कोई संतोषप्रद प्रमाण नहीं है। लार्ड चेस्टर फील्ड के प्रति अङ्गरेज़ी भाषान्तरकर्ता का पत्र ज्यों का त्यों अनुवाद करके हम पाठकों के सामने रक्खे देते हैं। वे इन बातों का निर्णय स्वयं कर लें।

श्री १०८ चेस्टर फील्ड के अर्ल महोदय की सेवा में

पेकिन १२ मई १७४९

परम पूज्य महोदय !

२३ दिसम्बर सन् १७४८ के दिन जो पत्र मैंने आपकी सेवा में भेजा था उसमें जो कुछ मुझे इस विस्तृत राज्य के विशेष स्थान वर्णन

और प्राकृतिक इतिहास के सम्बन्ध में लिखना था वह लिख चुका हूँ। इसके आगे कुछ पत्रों मे मेरा विचार था कि मैं आप को यहाँ के कायदे। कानून, राज्य व्यवस्था, धर्म और लोगों के रहन-महन, रीति-रिवाज के विषय मे लिखता किन्तु हाल मे एक ऐसी घटना घटित हो गई है कि मुझे विवश होकर अपने विचार स्थगित कर देने पडे। यहाँ के विद्वानों का ध्यान आजकल उसी घटना की ओर आकृष्ट हो रहा है और सभव है आगे चल कर योरोपीय विद्वानों का भी ध्यान उसी ओर आकृष्ट हो जाय। इस घटना के वृत्तांत से आप सरीखे महानुभावों का कुछ न कुछ मनोरञ्जन अवश्य होगा; यह समझ कर तत्सम्बन्धी अद्यावधि उपलब्ध बातों को स्पष्ट लिख कर आपके सामने रखता हूँ।

चीन से लगा हुआ पच्छिम की ओर तिब्बत नाम का विस्तृत देश है। कुछ लोग "बरान टोला" भी कहते हैं। इस देश के लासा नामक प्रान्त में मूर्ति पूजकों का गुरू दलाई लामा रहता है। समीपवर्ती देश के निवासी भी देवता समझ कर उसकी पूजा करते हैं। धार्मिक वृत्ति के लिये अधिक प्रख्यात होने के कारण लाखों धार्मिक मनुष्य उसका आशीर्वाद लेने के लिये लासा जाकर उसका दर्शन करते है और भेट चढाते है। उसका भव्य निवास मन्दिर पाऊताला पहाड पर बना हुआ है। इस पहाड के इर्द गिर्द और लासा प्रान्त भर में भिन्न-भिन्न दरजे के इतने लामे रहते हैं कि यदि उनकी सख्या कही जाय तो लोग विश्वास न करें। इनमें से बहुतों ने अपने रहने के लिये बड़े-बडे सुन्दर मन्दिर बना रक्खे हैं। इनका भी मान सर्वसाधारण दलाई लामा से उतर कर करते हैं। इटली की तरह देश भर में धर्मोपदेशक ही धर्मोपदेशक देख पडते है तार्तारी, मोगल साम्राज्य और अन्य पूर्वीय देशों से प्राप्त भेंट पर इनका निर्वाह होता है। जब लोग दलाई लामा की पूजा करते है तो वे उसे एक सिहासन पर बैठा देते हैं। इस पर एक गलीचा रहता है उसी पर वह पलथी मार कर बैठ जाता है। उसके भक्त उसके आगे बडी नम्रता से साष्टाङ्ग दण्डवत करते हैं परन्तु वह उनका कुछ भी सत्कार नहीं करता। यहाँ तक कि बडे-बडे

राजा महाराजाओं से बोलता तक नहीं। वह केवल अपना हाथ उनके मस्तक पर रख देता है और वे समझते है कि हमारे सब पाप छूट गये। उनका यह भी कहना है कि वह सर्वज्ञ और हृदय की भीतरी बातों को भी जानता है। लगभग २०० बड़े बडे लामे उसके शिष्य है। वे लोगों से कहते फिरते है कि दलाई लामा अमर है और जब जब वह मरता हुआ दिखलाई पडता है तब तब वह केवल एक शरीर छोड़ कर दूसरा शरीर धारण करता है।

चीन देश के विद्वानों का चिरकाल से ऐसा मत है कि दलाई लामा के निवास मन्दिर के पुस्तकालय मे प्राचीन काल से बहुत सी पुरानी पुस्तके छिपी रक्खी है। वर्तमान राजा को प्राचीन ग्रन्थों के शोध करने का बड़ा शौक है, उसे लोगों के उपरोक्त मत का इतना विश्वास हो गया है कि उसने ग्रन्थों को ढूंढ निकालने का दृढ संकल्प कर लिया है इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उसे पहले एक ऐसे व्यक्ति की खोज करने की चिन्ता हुई जो प्राचीन भाषा और लिपि दोनों का पडित हो। अन्त में "काउत्सू" नाम का एक विद्वान उसको मिल गया उसकी आयु ५० वर्ष की थी। वह बडा गंभीर, उदार चित्त और एक अच्छा वक्ता था। कई वर्ष पेकिन मे रहने के कारण उसकी एक लामा से गाढ मैत्री हो गई थी। उसी की सहायता से तिब्बत मे रहने वाले लामों की भाषा का उसे अच्छा ज्ञान हो गया था।

भाषा और लिपि की योग्यता रखने के कारण ही काउत्सू ने अपना काम प्रारंभ कर दिया। जनता पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ने के लिये राजा ने उसे अमूल्य वस्त्र प्रदान किये और प्रधान मंत्री के "कोलोआ" पद से उसे विभूषित भी कर दिया। राजा ने दलाई लामा के लिये अमूल्य उपहार भेजे और अपने हाथ से लिख कर निम्न लिखित आशय का एक पत्र भी दिया।

"ईश्वर के माननीय प्रतिनिधि, श्रेष्ठ, अतिपवित्र, पूजनीय श्री गुरु जी के कमल चरणों मे अनेकानेक साष्टाङ्ग प्रणाम।

भगवान् मैं चीन देश का राजा और संसार भर का महाराजा अपने मुख्य मंत्री काउत्सू द्वारा अत्यन्त नम्रता और सत्कार के साथ आप के चरणारविन्दों में बार बार अपना सर झुकाता हूँ और अपने सम्बन्धियों और अपने देश के कल्याण के लिये आपके आशीर्वाद की भिक्षा माँगता हूँ।

प्राचीन ग्रन्थों के शोध करने और पुरातनकालीन ज्ञान को पुनर्जीवित कर उसको ग्रहण करने की मेरी प्रबल लालसा है। मुझे पता चला है कि आपके प्राचीन ग्रन्थ-रक्षागार में कुछ अमूल्य पुस्तकें हैं और जिनको दीर्घ काल होने के कारण विद्वान से विद्वान मनुष्य भी समझने के लिये नितान्त असमर्थ है। उनको नष्ट होने से बचाने के लिये मैंने अपने "काउत्सू" नामक अत्यन्त विद्वान और माननीय मंत्री को पूर्ण अधिकार देकर आपकी सेवा में भेजा है। उक्त ग्रन्थ-रक्षागार मे प्रविष्ट होकर प्राचीन ग्रन्थों को पढ कर छान-बीन करने की आज्ञा आप उसे दे दीजिये। यही मेरी प्रार्थना है। मुझे पूर्ण आशा है कि प्राचीन भाषा में अत्यन्त निपुण होने के कारण पुराने से पुराने ग्रन्थों को वह भली भाँति समझ लेगा। उसे इस बात की भी ताकीद कर दी गई है कि यह मेरे आंतरिक भावों को आपके सन्मुख प्रगट कर के, जिस प्रकार हो, आपकी आज्ञा ग्रहण करे।"

काउत्सू ने अपने प्रवास की बडी लम्बी चौडी रामकहानी लिखी है जिसको पढकर आश्चर्य होता है किन्तु उसे सविस्तार कह कर मैं आपके अमूल्य समय को नष्ट नहीं करना चाहता। इंगलैण्ड लौटने पर मेरा विचार है कि सारी बातें अङ्गरेजी भाषा में लिख कर प्रसिद्ध करूं। यहाँ पर केवल इतना ही लिखना चाहता हूँ कि वह उस पवित्र प्रान्त में पहुँचा और मूल्यवान भेंट देने के कारण इच्छित स्थान तक पहुँचने मे फलीभूत हुआ। उस पवित्र विद्यालय में रहने के लिये उसे एक स्थान मिला और एक विद्वान लामा ने इस पवित्र काम में उसको सहायता देने का वचन भी दिया। वह ६ मास पर्यन्त रहा और इस बीच में

उसने कुछ प्राचीन अमूल्य ग्रन्थों का अनुसंधान भी किया। इन ग्रन्थों में कुछ वाक्य उसने अलग लिख लिये और उनके लेखक और, जिस समय जिस स्थान में वे लिखे गये थे, उस समय और उस स्थान का एक अच्छा व्योरा अनुमान से उसने दिया है, जिससे सिद्ध होता है कि काऊत्सू कितना बडा विद्वान, विचारवान और बुद्धिमान था।

शोधे हुये ग्रन्थों मे से एक बडा प्राचीन है। सैकड़ों वर्ष तक बड़े बड़े लामे भी उसे नही समझ सके। यह नीति संबन्धी एक छोटी सी पुस्तक है और प्राचीन गिमना सोफिस्टस अथवा ब्राह्मण भाषा और लिपी मे लिखी हुई है। यह पुस्तक कहाँ लिखी गई अथवा इसे किसने लिखा काउत्सू इसका कुछ पता नही देता। उसने इसका चीनी भाषा में अनुवाद किया यद्यपि उसके कथनानुसार मूल ग्रन्थ की रोचकता अनुवादित ग्रन्थ मे नहीं आई। इस पुस्तक के सम्बन्ध मे बोन्फीज और दूसरे विद्वानों के मत भिन्न भिन्न है। जो इसकी विशेष प्रशंसा करते हैं उनका कहना है कि इस पुस्तक का रचयिता तत्ववेत्ता कानफ्यूशस है। मूल पुस्तक खो गई है। ब्राह्मणी भाषा मे लिखी हुई पुस्तक खोई हुई पुस्तक का अनुवाद है। दूसरा दल कहता है कि कानफ्यूशस का समकालीन और टेओसी पंथ का संस्थापक चीन देश के दूसरे तत्ववेत्ता ल्याओ कियून ने इसे निर्माण किया। परन्तु भाषा के सम्बन्ध में दोनों दलों के विचार सामान है। एक तीसरा दल और है। वह पुस्तक के कुछ विशिष्ट भावों और लक्षणों को देख कर कहता है कि पुस्तक को डंडमिस नाम के ब्राह्मणों ने लिखा था। उसके सिकन्दर बादशाह के पास एक पत्र भेजा था जो योरोपीय लेखकों को मालूम है। तीसरे दल से काउत्सू का मत बहुत कुछ मिलता जुलता है। वह कहता है कि पुस्तक का लेखक कोई प्रचीन ब्राह्मण है और उसकी ओजस्विनी भाषा से ज्ञात होता है कि यह मूल ग्रन्थ है भाषान्तर नहीं है। शंका एक बात की होती है कि उसकी योजना (plan) पूर्वीय लोगों के लिये बिल्कुल नवीन है और यदि उसके विचार पूर्वीय देशों के विचार से

न मिलते अथवा उसकी भाषा प्राचीन न होती तो लोग यही ख्याल कर बैठते कि इस पुस्तक का रचियता कोई योरोपियन था।

लेखक चाहे जो कोई रहा हो किन्तु इसका जयनाद इस नगर और साम्राज्य भर मे गूंज रहा है। और हर प्रकार के लोग बडे चाव से इसे पढ़ते है। यही देख कर इसको अंग्रेज़ी भाषा में भाषान्तर करने का मेरा भी चित उत्सुक हो उठा। आशा है यह श्रीमान के लिये एक अच्छा उपहार होगा। दूसरा उद्देश्य अनुवाद करने का मेरा यह है कि यदि मेरा अनुवाद आपको पसन्द आया तो आप स्वयं अनुमान कर लेंगे कि मूल ग्रन्थ कितना महत्वपूर्ण ग्रथ है। जिस ढंग पर मैंने अनुवाद किया है उस ढंग पर अनुवाद करने का विचार पहिले मेरा नहीं था। किन्तु पुस्तक के पवित्र विचार, उसके उच्च भाव और छोटे वाक्यों को देख कर मुझे विवश होकर वर्तमान ढग पर अनुवाद करना पडा। भाषान्तर करते समय सालोमान और प्रोफेटस के रचे हुए ग्रन्थों की भी सहायता मैने ली है।

प्रस्तुत अनुवाद से यदि श्रीमान का कुछ भी मनोरंजन हुआ वो मुझे बडी प्रसन्नता होगी, यहाँ के लोग और उनके देश की व्यवस्था मैं दूसरे पत्र मे लिखूंगा।

"आपका"

इंगलैण्ड में पहले पहल जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई तो उसकी अच्छी बिक्र हुई और थोड़े ही समय मे अर्थात् सन् १८१२ ई० तक इसके ५० सस्करण निकल गये। इसका अनुवाद फ्रेंच, जर्मन, इटैलियन, वेल्श भाषा में हुआ। भिन्न भिन्न देश के कवियों ने इसको कविता रूप में प्रकाशित किया और चित्रकारों ने इसके भावों का चित्र खींच खींच कर इसका गौरव बढ़ाया।

प्रस्तुत अनुवाद का मुख्य उद्देश्य मनुष्य मात्र मुख्य कर विद्यार्थियों मे जागृति फैलाने का है। मनुष्य जीवन यात्रा सुखमय किस प्रकार बनाई जा सकती है इसके साधन संक्षेपत: यथार्थ और उत्तम रीति से अच्छे

ढंग पर बतलाये गये है। गीता के श्लोकों की तरह विषय पाठकों को पहली दृष्टि मे बडे सूक्ष्म दिखलाई पडेंगे किन्तु उनका महत्व उस समय मालूम हो सकता है जब पुस्तक एकान्त मे स्थिर चित्त होकर ध्यानपूर्वक पढी जाय।

महाराज भरथरी का कथन है:—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात्।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते॥
व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते।
यस्यांगेखिललोकवल्लभतमं शीलं समुन्मीलति॥

लोगों का कहना वृथा है कि मनुष्य का आभूषण गहना है और उत्तम उत्तम वस्त्रों से मनुष्यों का मान होता है। सच बात तो यह कि केवल सदाचार ही एक मात्र मनुष्य का सच्चा आभूषण है। मै मानता हूँ कि सदाचार के उपदेश अन्य धर्मो की अपेक्षा हमारे धर्म मे बहुत से भरे पड़े है, मै मानता हूँ कि हमारा धर्म सदाचार ही के सांचे पर ढला है किन्तु मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं हूँ कि हमारे पास सदाचार के साधन होते हुये भी हममे से कितने सच्चे सदाचारी है। वाहरी सदाचारी बहुत से मिलेंगे किन्तु सच्चे सदाचारी हज़ार में दो ही चार मिल सकेंगे।

इसके प्रमाण में सर्वसाधारण की गई बीति हालत को छोड कर मैं विद्यार्थियों की वर्तमान स्थिति की किंचित् समालोचना करता हूँ। दृष्टि डालते ही शोक से कलेजा थर थर कांपने लगता है। तन क्षीण, मन मलीन और हृदय कमजोर दिखलाई पडते है। व्यग्रता उनका पीछा नही छोडती, किसी काम मे उनका चित्त नहीं लगता। लगे कहाँ से जब कि दुर्व्यसन का घुन उसके शरीर मे लगा हुआ है। उन्ही दुर्व्यसनों के कारण, जिनके नाम लेने से घृणा उत्पन्न होती है, अल्प जीवन ही में उन्हे कराल काल के गाल में जाना पडता है। और उनके जाने के साथ ही साथ हमारी मातृ-भूमि भारत माता की आशाओं पर भी पानी फिरता

जाता है। हा शोक! जिस जाति में महाराज दधीचि ऐसे स्वदेश भक्त हो गये जिन्होंने देश के लिये अपने पंच भूत शरीर को अर्पित कर दिया, जिस जाति में महाराणा प्रताप ऐसे अग्रगण्य वीर उत्पन्न हुये, जिन्होंने बन बन भटकना और सूखी रोटियों पर निर्वाह करना पसन्द किया, किन्तु यवनों की अधीनता स्वीकार नहीं की, जिस जाति में गुरू गोविन्दसिंह ऐसे धार्मिक गुरु पैदा हुए, जिन्होंने धर्म के लिये अपने प्राण प्यारे दोनों पुत्रों को दीवारों में चुनवा दिया किन्तु मुँह से "उफ" तक नहीं निकाला, उस जाति के बच्चे ऐसे कायर, निर्वीर्य और कर्तव्यहीन हों, यह कितने शोक और लज्जा की बात है।

किन्तु यह सब समय का फेर है। इतना ह्रास होते हुये भी यदि कुछ नियम बच्चों के सामने रक्खे जायं और उनके संरक्षक उनको उन्हीं के अनुसार अपने आचार बनाने के लिये उन्हें विवश करें तब भी वर्तमान स्थिति में बहुत कुछ परिवर्तन हो सकता है! संस्कृत साहित्य में ऐसी अनेक पुस्तकें मिलेंगी जिनमें ऐसे ऐसे उत्कृष्ट नियमों का अभाव नहीं है किन्तु हिन्दी साहित्य में ऐसी पुस्तकें कदाचित् बहुत कम मिलें।

प्रस्तुत पुस्तक मे ये नियम जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त बडी खूबी से बतलाये गये हैं। इसको पढ़कर सदाचार निर्माण में पाठकों को यदि कुछ भी सहायता मिली तो मै अपने अनुवाद को सार्थक समझूंगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस अंग्रेजी पुस्तक से यह पुस्तक अनुवादित की गई है उसकी भाषा कितनी पेचीदी और कहीं कहीं पर कितनी क्लिष्ट है। संभवतः मूल पुस्तक की रोचकता इस पुस्तक में लाने का प्रयत्न किया गया है किन्तु हम स्वयं अपने मुंह मियां मिट्ठू बन कर नहीं कह सकते कि इस प्रयत्न में हमें कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है। पाठक इसका निर्णय स्वयं कर लें।

दारागंज, प्रयाग
रामनवमी १९७६

केदारनाथ गुप्त

विषयानुक्रमणिका

पूर्वार्द्ध

पहला खण्ड

व्यक्तिगत मानवी कार्य

दूसरा खण्ड

मनोधर्म

तीसरा खण्ड

चौथा खण्ड

कौटुम्बिक सम्बन्ध

पाँचवाँ खण्ड

ईश्वर की करनी अथवा मनुष्यों में दैविक अन्तर

छठवाँ खण्ड

सामाजिक कर्त्तव्य

सातवाँ खण्ड

उत्तरार्ध

पहला खण्ड

सामान्यत: मनुष्य प्राणी के विषय में

दूसरा खण्ड

मानवी दोष और उनके परिणाम

तीसरा खण्ड

स्वपरविघातक मानवी मनोधर्म

चौथा खण्ड

मनुष्यों को अपनी जातिवालों से मिलनेवाले लाभ

पाँचवाँ खण्ड

स्वाभाविक योगायोग

मनुष्य जीवन की उपयोगिता

पूर्वार्द्ध

पहिला खण्ड

व्यक्तिगत मानवी कार्य

पहला प्रकरण

कार्य्याकार्य विचार

*परमेश्वर ने मनुष्य को सर्व-श्रेष्ठ बनाया है। उसने उसको विचार-*शक्ति दी है। उसका कर्त्तव्य है कि वह इस विचार-शक्ति से काम ले। यदि नहीं लेता है तो उसमे और एक साधारण पशु मे कोई अन्तर नहीं है।

दो चार कोस की यात्रा करने के लिये हम कैसे कैसे बँधान बाधते हैं। कौन कौन हमारे साथ चलेगा, रास्ता ख़राब तो नहीं है, खाने पीने का सामान तो ठीक है, कुल कितना खर्च पड़ेगा, इन सब बातों की हमे कितनी चिन्ता रहती है। जब इतनी छोटी यात्रा के लिये इतनी झंझट करनी पड़ती है तो इस बड़ी संसार यात्रा के लिये कितनी बड़ी झझट की आवश्यकता है इसका अनुमान पाठक स्वय कर सकते हैं।

ऐ मनुष्य, ज़रा सोच तो सही तू इस ससार मे किस वास्ते पैदा किया गया है। अपनी शक्तियों का ख़्याल कर। अपनी आवश्यकताओं पर विचार कर। तू अपने कर्तव्य आप से आप समझ जायगा और विघ्न-बाधाओं से बचा रहेगा।

जो तुझे कहना है उस पर बिना विचार किये और उसका जो परिणाम होगा उस पर बिना सूक्ष्म निरीक्षण किये तू कुछ न बोल। ऐसा करने से अपकीर्ति का भय न रहेगा। किसी के सामने लज्जित न होना पड़ेगा, और पश्चाताप और चिन्ता से मुक्ति मिल जायगी।

अविचारी मनुष्य का अपनी जीभ पर कुछ भी वश नहीं रहता। वह जो मन आता है बड़बड़ा डालता है। परिणाम यह होता है कि उसे अपनी ही बातों मे उल्टी मुँहकी खानी पड़ती है।

मनुष्य नही जानता कि इस घेरे के उस ओर क्या है किन्तु तेज़ी से दौड़ कर फादना चाहता है। सभव है उसका पैर गढे मे पड़ जाय। यही दशा उस मनुष्य की होती है जो बिना आगा पीछा सोचे सहसा किसी काम मे हाथ डाल वैठता है।

इसलिये पहिले कार्य्य का विचार कर और बुद्धि और विचार-शक्ति से काम ले। ऐसा करने से यह ससार-यात्रा सुलभ होगी और तू सुरक्षित स्थान पर पहुँच जायगा।

दूसरा प्रकरण

विनय

सारे ससार की ओर यदि हम एक बार दृष्टिपात करे तो यह बात सहज ही मे मालूम की जा सकती है कि मनुष्य प्राणी एक कितना क्षुद्र जीव है। ऐसा होते हुए फिर ऐ मनुष्य, तू अपनी बुद्धि और ज्ञान का घमड क्यो करता है ?

अपने को अज्ञानी जानना ही ज्ञानी होने की पहिली सीढी है, और यदि तू चाहता है कि दूसरे हमे मूर्ख न समझे तो भी अपने को बुद्धिमान समझना छोड़ दे।

जिस प्रकार सादा वस्त्र ही एक सुन्दर स्त्री को सब प्रकार अलकृत कर देता है, उसी प्रकार प्रशस्त और पवित्र आचरण ही बुद्धिमत्ता का सर्वोत्तम आभूपण है।

शीलवान मनुष्य के विनययुक्त भापण से सत्य मे और भी अधिक तेजस्विता आती है। मनुष्य को अपने कथन का सदैव संकोच अथवा अविश्वास मालूम होते रहना चाहिये। कोई भी वात बिल्कुल साहस-पूर्वक और विश्वास से न कहना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक बात की सच्चाई मनुष्य की बुद्धि मे नहीं आ सकती।

केवल अपनी ही बुद्धिमत्ता पर भरोसा न करो। अपने मित्रो की भी बातो पर ध्यान दो और उनसे लाभ उठाओ।

जब कोई तुम्हारी प्रशसा कर रहा हो तो उसकी ओर से अपने कानो को फेर लो और उस पर विश्वास न करो, क्योकि वह मदिरा से भी अधिक हानिप्रद है। परमेश्वर को छोड़ कर अन्य कोई भी निर्दोप नहीं है, इसलिये सब से पीछे ही अपने को निर्दोप समझना अच्छा है।

जिस प्रकार घूघट स्त्री की सुन्दरता को बढ़ा देता है उसी प्रकार विनय की छाया मनुष्य के सद्गुणो को और अधिक उत्तम बना देती है।

परन्तु अभिमानी मनुष्य की ओर देखो। वह तड़क भड़क की पोशाक पहिन कर इधर उधर देखता हुआ बड़े अभिमान के साथ सड़को पर चलता है। उसे सदैव यही पडी रहती है कि लोग हमारी ओर देखे, आश्चर्य करे, और बडे अदब से झुक कर हमे सलाम करे।

वह अपनी गरदन सीधी किये रहता है और ग़रीब गुरबो की ओर ध्यान नहीं देता; वह अपने से कम दरजे वालो के साथ बड़ी धृष्टता का बर्ताव करता है। परिणाम यह होता है कि उससे ऊँचे दरजे के लोग भी उसके घमड और मूर्खता की सहज ही मे उपहास करने लगते हैं।

घमडी मनुष्य दूसरों की सम्मति का अनादर करता है। उसे अपनी ही बुद्धि का भरोसा रहता है किन्तु अन्त में उसे धोखा खाना पड़ता है।

वह अपने ही अहङ्कारपूर्ण विचारों मे मस्त रहता है, और दिन भर ही अपनी प्रशसा सुनने और कहने में उसे आनन्द मिलता है।

परन्तु इधर तो वह आत्मश्लाघा में चूर रहता है और उधर हा जी हा जी करने वाले खुशामदी उसे चूस कर फेंक देते हैं।'

तीसरा प्रकरण

उद्योग

जो दिन बीत गये वे लौटनेवाले नहीं और जो आनेवाले हैं उन पर कोई भरोसा नहीं, इसलिये, ऐ मनुष्य तुझे उचित है कि तू न भूत काल के लिये पाश्चात्ताप कर और न भविष्य पर अधिक विश्वास रख, केवल वर्तमान काल का उपयोग करना अपना लक्ष्य बना। यह समय अपना है और आगे चलकर क्या होगा, यह कोई जानता नहीं। अतएव जो कुछ करना है उसे शीघ्र ही कर डाल। जो काम प्रातःकाल हो सकता है उसे सायकाल पर मत छोड़।

आलस करने से आवश्यक वस्तुये भी प्राप्त नही होतीं, जिससे मनुष्य को बहुत दुख होता है, परन्तु परिश्रम करने से आनन्द ही आनन्द मिलता है। उद्योगी को किसी बात की कमी नहीं रहती क्योंकि उन्नति और विजय उसके पीछे पीछे चलते हैं।

जो कभी भी खाली नहीं बैठता और आलस को शत्रु समझता है वही धनवान है, वही अधिकार-संपन्न है, वही आदरणीय है और बडे बड़े राजे महाराजे उससे ही सलाह लेने की इच्छा करते हैं।

उद्योगी मनुष्य मुँह अँधेरे उठता है और अधिक रात गये सोता है; वह अपने मन और शरीर को मनन और व्यायाम द्वारा सशक्त बनाये रहता है।

परन्तु आलसी मनुष्य ससार को कौन चलावे स्वय अपने ही को भार-स्वरूप बन जाता है, उसका समय काटे कहीं कटता; वह दर दर भटकता फिरता है; उसे सूझ नहीं पड़ता कि मुझे क्या करना चाहिये। बादल की परछाईं की भाँति उसकी आयु व्यतीत हो जाती है। और वह कोई ऐसी वस्तु नहीं छोड़ जाता जिसको देख कर लोग उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका स्मरण करें।

व्यायाम के अभाव से उसका शरीर रोगी हो जाता है। काम करना चाहता है परन्तु करने का सामर्थ्य नहीं, मन मे अन्धकार का परदा पड़ जाने के कारण उनके विचार भी गड़बड़ा जाते हैं। उसको ज्ञानोपार्जन की लालसा होती है किन्तु उसमे उद्योग कहा। बादाम खाना चाहता है किन्तु छिलके तोड़ने का कष्ट कौन उठावे?

आलसी मनुष्य के घर मे बड़ी गड़बड़ी रहती है। उसके नौकर चाकर उड़ाऊ बीर और झगडालू हो जाते हैं और उसे विनाश की ओर खींचते रहते हैं। वह आँखों से देखता है, कानों से सुनता है और बचने का प्रयत्न भी करता है किन्तु उससे निकल कर भागने का उसमें साहस कहाँ? अन्त में आपत्ति तूफान की तरह उसे आ घेरती है और मृत्यु पर्य्यन्त उसे पश्चात्ताप करना और लज्जित होना पड़ता है परन्तु समय निकल जाने पर फिर क्या हो सकता है?

चौथा प्रकरण

ईर्ष्या

यदि तेरी आत्मा सम्मान की भूखी है, यदि तेरे कान अपनी प्रशंसा सुनने के लिये आतुर हो रहे हैं, तो जिस धूलि (भौतिक पदार्थ) से तू बना है उससे दिल हटा कर किसी स्तुत्य (आध्यात्मिक) वस्तु को अपना ध्येय बना ले।

आकाश मंडल को चुम्बन करने वाले इस शाह बलूत के वृक्ष को देख। यह किसी समय पृथ्वी माता के पेट में एक क्षुद्र बीज था।

जो कुछ व्यवसाय करता है उसमें सर्वोच्च होने का प्रयत्न कर; अच्छे काम में किसी को भी अपने आगे न बढ़ने दे। दूसरों के गुणों का डाह न कर, अपने गुणों की वृद्धि करने की ओर ध्यान दे।

अपने प्रतिद्वन्दी को निन्दनीय साधनों का अवलम्बन लेकर दबाने की चेष्टा न कर, हृदय में पवित्र भाव रखते हुये उससे आगे निकल जाने का प्रयत्न कर। यदि सफल मनोरथ न हुआ तो कम से कम तेरा सम्मान तो अवश्य होगा।

सात्विक ईर्ष्या से मनुष्य की आत्मोन्नति होती है। उसको अपनी कीर्ति की जिज्ञासा लगी रहती है। और खिलाड़ी की तरह अपने काम की दौड़ लगाने में उसे आनन्द मिलता है। दुखों की कुछ परवाह न करता हुआ वह ताल वृक्ष की तरह बढ़ता है और उकाब की तरह अपना लक्ष सूर्य रूपी अपने गौरव की ओर लगाये रहता है। रात्रि के समय स्वप्न में भी उसे श्रेष्ठ और बड़े पुरुषों के उदाहरण दिखलाई पड़ते हैं, और दिन भर उन्हीं के अनुकरण करने में उसे प्रसन्नता होती है। वह बडे बडे बन्धान बाध कर उन्हीं में जोश और उत्साह के साथ लगा रहता है, और फिर उसकी कीर्ति संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल जाती है।

परन्तु मत्सरी मनुष्य का अन्तःकरण चिरायते की तरह कड़ुवा होता है; उसके मुख के शब्दों से साथ विष बाहर निकलता है और पड़ोसियों की बढती देख कर उसे बेचैनी रहा करती है। वह पश्चाताप करता हुआ अपने झोपड़े मे पडा रहता है और दूसरों की भलाई देखकर बुरा मानता है, घृणा और द्वेष उसके हृदय को छेदते और उसके मन को शान्ति बिल्कुल नहीं मिलती।

मत्सरी मनुष्य के हृदय मे दूसरो की भलाई का प्रेम-भाव उत्पन्न नहीं होता और इसीलिये पड़ोसियो को भी अपने समान ही देखता है, अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करने का यह सदैव प्रयत्न करता है और उनके कामो की बुरी बुरी आलोचनाये किया करता है।

वह दूसरो की बुराई करने की ताक मे रहता है परन्तु लोगों के तिरस्कार उसका पीछा नहीं छोडते। अन्त मे मकड़ी की तरह अपने ही फैलाये हुए जाल मे फँस कर वह मर जाता है।

पाँचवाँ प्रकरण

तारतम्य

तारतम्य भी एक अद्भुत वस्तु है। जिसको तारतम्य नहीं वह मनुष्य काहे का ? यह कोई बिकने वाली चीज़ नही। मनुष्य मे थोडी बहुत स्वभाव ही से वर्तमान रहती है। हाँ, अधिक उपलब्ध करने के लिए निरीक्षण और अनुभव की आवश्यकता पडती है। इसके अवलम्बन से अनेक सदगुणों की प्राप्ति होती है। तारतम्य ही मनुष्य जीवन का नेता और स्वामी है।

अपनी जीभ को बन्द और ओठो को सी रक्खो। ऐसा न हो तुम्हारे ही मुख से निकले हुए शब्द शान्ति को भङ्ग कर दे।

जो लगड़े को देख कर हँसता है उसे स्मरण रखना चाहिये कि दूसरों को भी उससे ठट्ठा उडाने का अवसर मिल सकता है। जो दूसरों के दोष कहते फिरते हैं उनको भी अपने दोषों के सुनने का सौभाग्य अथवा दुर्भाग्य प्राप्त होता है। मनुष्य स्वभाव बहुत करके एक ही समान होता है। हम जैसा करेंगे वैसा दूसरे लोग भी हमारे साथ कर सकते हैं।

बहुत बोलने से पश्चाताप करना पड़ता है, केवल चुपचाप रहने में ही कल्याण है।

बक्की (वाचाल) से समाज को पीडा पहुँचती है, उसकी बकबक से कान की चैली फटने लगती है, वह बातचीत को नीरस बना डालता है।

अपनी बडाई तुम स्वय अपने मुख से न करो; नहीं तो लोग तुम्हारा तिरस्कार करेंगे। दूसरों का भी उपहास न करो, क्योंकि इससे भी तुम्हारी हानि होने की सम्भावना है।

बुरी लगने वाली हँसी दिल्लगी करना भी उचित नहीं है, इससे मित्रता भङ्ग होती है। वह जो अपनी जिह्वा को वश में नहीं रखता सकट में पडता है।

जैसी तुम्हारी स्थिति हो उसी के अनुसार सामग्री एकत्रित करो। आय से अधिक व्यय न करो। यदि युवा अवस्था में कुछ द्रव्य संचित कर लोगे तो बुढापे में तुम्हें आराम मिलेगा। द्रव्य की तृष्णा बुराइयों का घर है किन्तु मितव्ययिता हमारे गुणो का रक्षक है।

अपने काम पर ध्यान लगाओ। वृथा दूसरों से छेड़छाड न करो। काम न करने से काम में लगा रहना कहीं अच्छा है। सारे जगत की चिन्ता करना मूर्खता है।

आमोद प्रमोद में अधिक व्यय न करो, क्योंकि जितना कष्ट तुम उनके प्राप्त करने के लिये उठाओगे उससे अधिक आनन्द तुमको नहीं मिलेगा।

बढ़ती होने पर असावधान न रहो, अथवा विपुल धन पास हो जाने पर मितव्ययिता को तिलाञ्जलि न दो। जिसका ध्यान निरुपयोगी बातों की ओर अधिक रहता है उसे जीवन की आवश्यक बातों के लिए भी अन्त में शोक करना पड़ता है।

दूसरे के अनुभव से चतुराई सीखो, यह अनुभव बड़े कष्ट से मिलता है। यदि बिना मरे ही स्वर्ग मिले तो मरने की क्या आवश्यकता? चार जन यदि किसी बात को बुरा बतलाते हैं तो उसकी परीक्षा स्वय करने से क्या लाभ? लोगों की अपकीर्ति देखकर अपने दोष सुधारो।

भले प्रकार परीक्षा किये बिना किसी का भी विश्वास न करो किन्तु साथ ही साथ बिना कारण किसी पर अविश्वास भी न करो। ऐसा करना अनुदारता का लक्षण है। जब तुमने किसी की परीक्षा पूर्ण रूप से कर ली तो उसे द्रव्य की तरह सन्दूकरूपी अपने हृदय में बन्द कर लो और उसे एक अमूल्य रत्न समझो।

लोभी के उपकारों को स्वीकार न करो। वे तुम्हारे लिए जाल का काम करेंगे और तुम्हें उनके अहसानों से छुटकारा नहीं मिलेगा।

जिसकी आवश्यकता कल पड़े उसे आज ही न ख़र्च कर डालो। और जिसका प्रतिकार, बुद्धि अथवा दूरदर्शिता द्वारा हो सकता है उसको भावी पर मत छोड़ो।

तथापि यह न समझो कि तारतम्य से सदा विजय होगी, कोई नहीं कह सकता कि पल पल मे क्या होगा। अपनी ओर से उद्योग करना चाहिये, लाभ हानि तो परमेश्वराधीन है।

मूर्ख सदा अभागा नहीं रहता और न बुद्धिमान सदा विजयी होता है। तथापि न तो मूर्ख को कभी पूर्ण आनन्द हुआ और न बुद्धिमान को पूर्ण दुःख।

———

छठवाँ प्रकरण

धैर्य्य

जो जो इस ससार मे जन्म लेते हैं उनमे से प्रत्येक के भाग्य में कुछ न कुछ सकट आपत्ति क्लेश और हानि अवश्य लिखा रहता है। इसलिये, ऐ दुःख के पुतले मनुष्य! उचित है कि तू पहले ही से अपने मन को साहस और धैर्य्य से सुदृढ बना, ताकि भावी आपत्तियाँ तुझे मालूम न पडे। जिस प्रकार ऊँट मरुस्थल मे श्रम, गरमी, भूख और प्यास को सहन करता हुआ बराबर आगे को बढ़ता चला जाता है थक कर बैठता नहीं, उसी प्रकार मनुष्य का धैर्य्य ही सकट के समय मे उसको उत्तेजित करता है, उसे हार कर बैठने नहीं देता।

तेजस्वी पुरुष भाग्य की वक्रदृष्टि से नही डरता। उसकी आत्मा अपने गौरव को नहीं छोडती। वह अपने सुख को भाग्य की वक्रदृष्टि पर अवलम्बित नही रहने देता, और इसीलिए उसकी वक्रदृष्टि से निरुत्साही नही होता। समुद्र के किनारे की चट्टान की तरह एक स्थान पर जमा रहता है। और दु.ख की खारी लहरे उसका कुछ नहीं बिगाड सकती।

वह सकट के समय पहाड़ की तरह अचल रहता है। दुर्दैव के तीक्ष्ण बाण उसके पैर के पास आकर गिरते ह। विपत्तिकाल मे धैर्य्य और मन की दृढता उसे सँभाले रहती है। रणभूमि मे जाने वाले सैनिक की तरह वह जीवन की आपत्तियो का सामना करता हे और विजयी होकर लौटता है। उसका धैर्य्य दुर्दैव के बोझ को हल्का करता है और दृढता उसे दूर भगा देती है।

परन्तु कायर मनुष्य को अपनी कायरता के कारण लज्जित होना पडता है। दरिद्रता के कारण वह नीचता करने पर उतारू हो जाता है और फिर चुपके चुपके अपमान सहकर आपत्तियो को निमन्त्रित करता है।

जिस प्रकार घास की पत्ती हवा के झकोरे से हिलने लगती है, उसी प्रकार दुःख की केवल कल्पना उसको कँपा डालती है। सकट के समय वह पागल सा हो जाता है। उसे सूझ नहीं पड़ता कि क्या करना चाहिये। निराशा, उसे व्याकुल कर देती है। यह सब क्यों? केवल धैर्य्य न होने के कारण।

सातवाँ प्रकरण

संतोष

परमेश्वर सर्वव्यापी है। वह तेरे मन की बात जानता है। केवल दयालु होने के कारण ही वह कुछ इच्छाओं को पूर्ण नही करता। प्रत्येक मनुष्य कहता है कि ईश्वर हमारे ऊपर कुपित है, वह हमे दुःख दे रहा है। उसके घर मे न्याय नही। यदि ऐसा न होता तो हमारी ऐसी अच्छी हालत होकर भी ऐसी बुरी दशा क्यो होती? परन्तु प्रत्येक को ऐसी अच्छी हालत होकर भी ऐसी बुरी दशा क्यो होती? परन्तु प्रत्येक को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि अपनी अपनी योग्यता के अनुरूप सब को इस संसार मे स्थान मिलता है। उपयुक्त इच्छा पूर्ण होने और यश मिलने की व्यवस्था परमेश्वर ने पहिले ही से निश्चित कर रक्खी है। अपनी बेचैनी का, जिस दुर्दैव के लिये खेद करते हो उसका और उसी प्रकार अपने पागलपन, घमण्ड और क्रोध का, कारण ढूँढ निकालो! ईश्वर के प्रबन्ध के विषय मे वृथा बकबक न करो, पहिले अपना अन्तःकरण शुद्ध बनाओ।

मेरे पास अगर द्रव्य होता मुझको अधिकार मिला होता अथवा मुझे खाली रहने को मिलता तो मै बड़ा सुखी होता, ऐसा कभी मन मे न लाओ, क्योकि ये जिसके पास होते हैं उनके मार्ग मे भी तो अड़चने पड़ा करती हैं। दरिद्र मनुष्य धनवानों की चिन्ताओ और क्लेशो से बिलकुल अनभिज्ञ रहता है। वह नहीं जानता कि अधिकार के पीछे

कितनी कठिनाइयाँ और कितने झगड़े हैं। वह नहीं जानता कि खाली बैठना कितनी बुरी बात है, इसीलिये उन बातों के अभाव पर वह अपने भाग्य को कोसता है।

दूसरों को सुखी देखकर डाह न करो। तुम्हें नहीं मालूम कि उसके हृदय में कौन कौन से दुःख छिपे पड़े हैं। थोड़े में ही सतुष्ट हो जाना बड़ी बुद्धिमानी का काम है। जो धन की वृद्धि करता है वह अपने पीछे अधिक चिन्ता भी लगाता जाता है परन्तु सन्तोष एक गुप्त धन है। यह चिन्तित मनुष्य को नहीं मिलता, तात्पर्य यह है कि—

गजधन, हयधन, कनक धन, रतन खान बहु खान।
जब आवत सन्तोष धन, सब धन धूलि समान॥

किसी चेले ने अपने गुरु से पूछा कि महाराज दरिद्री कौन है, और श्रीमान कौन है? गुरु जी ने उत्तर दिया दरिद्री वह है जिसके हृदय में बड़ी तृष्णा हो और श्रीमान वह है जो सदैव प्रसन्न चित्त रहे।

धन सचित करना बुरा नहीं है। सम्पत्ति का उपयोग अगर अच्छा हुआ तो इससे अनेक पुरुषार्थ सिद्ध हो सकते हैं। धन के मद से यदि न्याय, समय, नियम, परहित बुद्धि अथवा विनय को तिलाञ्जलि न दी गई है तो सुख होगा। सम्पत्ति स्वतः बुरी नहीं है। किन्तु उससे उत्पन्न होने वाला मद बुरा है। इसको मारना बहुत कठिन है। सन्तोष से ही इस सम्पत्ति-जन्य मद को जीत सकते हैं।

आठवाँ प्रकरण

संयम

ईश्वरदत्त बुद्धि और आरोग्य का ठीक ठीक उपभोग करना ही इस मृत्युलोक के सुख को क़रीब क़रीब प्राप्त कर लेना है। जिनको ये बरकतें मिली हैं और जो उन्हें अन्त तक स्थिर रखना चाहते हैं उन्हें च है कि वे विषयों के प्रलोभन से बचते रहें।

जब वह (विषय) अपने स्वादिष्ट पदार्थों को तुम्हारे सामने मेज़ पर रक्खे, जब उसकी मदिरा प्याले मे चमकने लगे, जब हँस कर तुम्हें वह आनन्द और सुख की तरफ खींचने लगे तभी धोखे की वेला समझो और उसी समय अपनी बुद्धि से बड़ी होशियारी के साथ काम लो। ऐसे समय यदि तुम उसकी सम्मति के अनुसार चले तो समझ रक्खो तुमने धोखा खाया। जिस झूठे आनन्द को तुम देखते हो वस्तुतः वह दुःख है। उसके उपभोग से तुम रोगी बन जाओगे। और अन्त में तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।

विषय की मेहमानी की ओर देखो, उसके निमन्त्रित पाहुनों की ओर दृष्टिपात करो; जिसको उसने अपने पञ्जे मे कर लिया है उनकी दशा पर किञ्चित विचार करो। क्या वे दुर्बल, रोगी और निरुत्साही नहीं देख पड़ते ?

थोड़े ही दिन भोग विलास करने के पश्चात् उन्हें सारी आयु दुःख और निरुत्साह के साथ व्यतीत करनी पड़ती है। विषयो के कारण भूख मर जाती है, और इसीलिए उत्तम से उत्तम पदार्थों को खाने के लिए भी उनकी इच्छा नही चलती। अन्त मे वे उसके पञ्जे मे फँस कर नष्ट हो जाते हैं। ईश्वर-दत्त वस्तुओं का जो दुरुपयोग करते हैं उन्हें सचमुच ऐसा ही दड मिलना चाहिये।

दूसरा खण्ड

मनोधर्म

पहला प्रकरण

आशा और भय

आशा गुलाब के फूल से भी अधिक मधुर और मन को आनन्द देने वाली है, परन्तु भय की कल्पना भी बडी भयानक होती है। तथापि आशा में भूल कर और भय से डर कर उपयुक्त काम करने से पीछे मत हटो। सर्वदा समचित्त होकर प्रत्येक बात का सामना करने के लिये तैयार रहो।

सज्जन लोग मृत्यु से नहीं डरते; जो कोई पाप नही करता उसे किसी का डर कैसा? प्रत्येक कार्य्य मे समुचित विश्वास द्वारा अपने प्रयत्नों को उत्तेजित करते रहो। जहाँ तुमने विजय मे सन्देह किया वही तुम्हारा पराजय हुआ।

झूठा भय दिखा कर अपने मन को न डराओ, और कल्पनाजन्य भ्रम द्वारा अपना दिल छोटा न करो। आशा से ढाढस और भय से आपत्ति का आविर्भाव होता है। सफलता अथवा निष्फलता अपने ही विश्वास और दृढता पर अवलम्बित रहती है।

आशाशून्य होने के कारण ही तो तुम कहते हो कि हम इस काम को नहीं कर सकते। किन्तु यदि दृढतापूर्वक उसमे लगे रहो, तो जय अवश्य प्राप्त कर सकते हो। पोली आशा में मूर्खों को आनन्द होता है, और बुद्धिमान उसकी कुछ परवाह नही करते।

मन मे कोई भी इच्छा करने के पूर्व .खूब सोच विचार लो और अपनी आशा को मर्य्यादा के बाहर न लाओ; अर्थात् जो वस्तु मिल सकती है आशा उसी की करो। यदि ऐसा करोगे तो प्रत्येक काम में तुम्हें सफलता मिलेगी और निराशाओं मे व्याकुल होने का समय न आवेगा।

दूसरा प्रकरण

आनन्द और दुःख

इतनी खुशी न मनाओ कि तुम्हारा मन क्षुब्ध होने लगे और न इतना अधिक दुःख करो कि तुम्हारा दिल छोटा हो जाय। इस ससार मे कही न तो हद दरजे का सुख है और न हद दरजे का दुःख है। जिस प्रकार दिन के पीछे रात्रि और रात्रि के पीछे दिन आता है उसी प्रकार सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख होता है। महाकवि कालीदास ने भी कहा है।

कास्यैकात सुखमुपगत दुःखमेकाततोवा।
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

अर्थात् न सदैव किसी को सुख ही रहता है, और न सर्वदा किसी को दुःख ही रहता है। यह दु.ख का चक्र रथ के पहिये की तरह नीचे ऊपर बारी बारी से घूमा करता है।

अच्छा, तो अब आनन्द का स्थान देखो। बाहर बारनिश लगी होने के कारण यह बडा सुन्दर मालूम होता है। उसमे से लगातार आनन्द के झोके निकलने के कारण तुम उसे पहचान सकते हो। घर की मालकिन बाहर खड़ी हो जाती है, गाती है, लगातार हँसती है और आने जाने वालो से कहती है कि देखो जीवन का आनन्द अन्यत्र कहीं नहीं मिलने का, इसलिये मेरे पास चले आओ।

परन्तु तुम ड्योढ़ी पर पैर तक न रक्खो और न उन लोगों की सोहबत करो जो उनके घर आया जाया करते हैं। वे अपने को बड़े सैलानी जीव लगाते हैं, हँसते हैं, चैन करते हैं, परन्तु उनके सब कामों मे मूर्खता और पागलपन भरा रहता है। उनमें दुष्टता कूट कूट कर भरी रहती है, उनका चित्त सदैव बुराई की ओर लगा रहता है, भय उनको चारों ओर से घेरे रहता है ; और विनाश का गढ़ा मुँह फैलाये उनके पैरों तले बैठा रहता है।

अब ज़रा दूसरी ओर नज़र दौड़ाइये और वृक्षों से आच्छादित घाटी मे उस दुःख को देखिये जो मनुष्य दृष्टि से परे हैं। उस घर की मालकिन की दशा सुनिये। वह क्लेश से पीड़ित है और दुःख की लम्बी लम्बी आहें भर रही हैं। किन्तु मानवी दुःख पर विचार करने मे उसे आनन्द मिलता है।

वह जीवन की साधारण घटनाओं को याद कर कर के रोती है। मानवी दुष्टता और दौर्बल्य की चर्चा बैठे किया करती है। सारा संसार उसे पापमय दिखलाई पडता है। जिन जिन वस्तुओं की ओर वह दृष्टि फेंकती है वे सब उसी की तरह नीरस मालूम होती है ; और इसी कारण रात दिन उससे घर मे उदासीनता का वास रहता है। उसके आश्रम के समीप न जाओ, उसकी हवा मे छूत है उससे सदैव बचे रहो, नहीं तो वह जीवन रूपी वाटिका को सुशोभित करने वाले फलों को नष्ट कर देगी, और फूलों को सुखा डालेगी।

आनन्दाश्रम को छोड़ते समय मनहूस और उदासीनतापूर्ण स्थान की ओर जाने में ख़बरदारी रक्खो। बीच का मार्ग सावधानतया पकडो। यह मार्ग तुमको धीरे धीरे शाति देवी के कुञ्ज तक पहुँचा देगा। शान्ति उसी के पास है। सुरक्षिता और सन्तोष वहीं है। वह प्रफुल्लित है परन्तु विलासी नहीं है। वह गम्भीर है किन्तु मनहूस नहीं है। वह जीवन के सुख दुःख की ओर सम दृष्टि से देखती है।

जिस प्रकार पर्वत पर से आसपास का दृश्य कई मील तक स्पष्ट देख पड़ता है उसी प्रकार शान्ति देवी के कुञ्ज से उन लोगों का पागलपन और दुःख देखने मे आता है जो विलासप्रिय होने के कारण चैनी और रंगीले मित्रो के साथ घूमते फिरते हैं अथवा उदासीनता और निरुत्साहपन मे पड़ कर मनुष्य जीवन के दुःख और सकटो के लिए जन्म भर शिकायत करते हैं।

तुम दोनो को सहानुभूति की दृष्टि से देखो, और उनकी भूलों को देख कर अपनी भूलों के सुधारने का प्रयत्न करो !

तीसरा प्रकरण

क्रोध

जिस प्रकार तूफान अपने वेग से वृक्षो को उखाड कर फेंक देता है और प्रकृति देवी चेहरे को कुरूप बना देती है। अथवा जिस प्रकार भूकम्प अपने क्षोभ से, नगर के नगर, भूतलशायी कर देता है, उसी प्रकार क्रोधित मनुष्य का क्रोध अपने चारों ओर उपद्रव मचाये रहता है। भय और क्रोध उसके पास हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। इसीलिए अपनी कमज़ोरी पर विचार करो, उसको स्मरण रक्खो। ऐसा करने से तुम दूसरों के अपराधों को क्षमा कर सकोगे।

क्रोध को अपने पास न फटकने दो। उसे अपने पास न आने देना मानो स्वय अपने हृदय को काटने अथवा अपने मित्र को मारने के लिये तलवार देना है। यदि तुमने किसी की छोटी मोटी बात सह ली तो लोग तुम्हे बुद्धिमान् कहेंगे, और यदि तुमने उसे भुला दिया तो तुम्हारा चित्त प्रसन्न रहेगा।

क्या तुम नही देखते हो कि क्रोधी मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट रहती है ? इसलिये जब तक तुम्हारे होश हवाश दुरुस्त हैं, तब तक दूसरों का

क्रोध देख कर शिक्षा ग्रहण करो। मनोविकार के चक्कर में पड़ कर कोई बेहूदा काम न कर बैठो। भला यह तो बतलाओ कि भयङ्कर तूफान के समय क्या तुम अपनी नाव समुद्र मे छोड़ दोगे ?

क्रोध रोकना यदि कठिन मालूम होता हो तो उसे पहिले ही न आने देना बुद्धिमत्ता है। इसलिये क्रोधोत्पन्न करने वाली प्रत्येक बात से बचे रहो और जब कोई ऐसी बात आने वाली हो तो चौकन्ने हो जाओ। कठोर भाषण से मूर्ख मनुष्य चिढ़ता है परन्तु बुद्धिमान हँस कर इसका तिरस्कार करता है।

किसी से बदला लेने की बात अपने हृदय मे मत लाओ। वह तुम्हारे हृदय को पीड़ा देगी और उसके उत्तमोत्तम भावो को मिट्टी में मिला देगी। हानि पहुँचाने की अपेक्षा दूसरों के अपराध क्षमा करने के लिये सदैव तैयार रहो। जो बदला लेने की घात में रहता है वह एक प्रकार से अपने आपत्ति का बीज बो रहा है।

जिस प्रकार पानी डालने से आग बुझ जाती है, उसी प्रकार मृदु भाषण से क्रोधित मनुष्य का क्रोध शात हो सकता है और वह इस तरह शत्रु से मित्र बन सकता है।

सोचो तो सही, क्रोध करने योग्य कितनी थोड़ी बातें हैं, तब तुम आश्चर्य करोगे कि मूर्खों को छोड़कर दूसरों को क्रोध किस प्रकार आता है। मूर्ख और अशक्त मनुष्य ही क्रोध अधिक करते हैं। परन्तु स्मरण रक्खो कि उसका परिणाम सिवाय पश्चात्ताप के और दूसरा कुछ शायद ही होता हो। मूर्खता के सामने लाज, और क्रोध के सामने पश्चाताप हाथ जोडे खडे रहते हैं।

चौथा प्रकरण

दया

जिस प्रकार वसंत फूलों को पृथ्वी पर बिखेरता है और मेघ जिस प्रकार खेतों को शस्यसपन्न करता है उसी प्रकार दया अभागे प्राणी मात्र पर कल्याण की वर्षा करती है।

जो दूसरो पर दया करता है वह दूसरो से दया के लिए अपनी शिफारिस करता है। परन्तु जिसको दया नहीं है वह उसका पात्र नहीं।

जिस प्रकार भेड़ों की चिल्लाहट से क़साई का हृदय नहीं पिघलता उसी प्रकार दूसरों के दुःख से निर्दयी का हृदय नहीं पसीजता।

दया के आँसू गुलाब पर के हिम कणों से भी अधिक मोहक होते हैं। इसलिये दीनों के आर्तनाद को सुनकर कान न बन्द करो; और न निर्मल अन्तःकरण वालों को आपत्ति मे देख कर कठोर हृदय बन जाओ।

जब अनाथ तुम्हारे पास सहायता के लिये आवे और वे आँखो में आँसू भर कर तुम्हारी मदद माँगे, तो उनके दुःखों पर ध्यान दो और निराश्रितों की यथाशक्ति सहायता करो। रास्ते मे भटकते हुए वस्त्रहीन निराधार मनुष्य को शीत से काँपते हुये देखो तो उस समय अपनी उदारता का परिचय दो। दया की छाया उसके ऊपर करके उसके प्राणों की रक्षा करो। ऐसा करने से तुम्हारी आत्मा को शाति मिलेगी।

जब कि ग़रीब रोगी बिस्तरे पर पडा कराह रहा हो, जब कि कोई बदनसीब कारागृह मे पडा पड़ा सड़ रहा हो, अथवा पके बाल वाला एक वृद्ध पुरुष तुमसे दया की इच्छा रखता हो, उस समय भला बताओ तो सही, उनके दुःखों की ओर कुछ भी न ध्यान देकर तुम क्या अपने ऐश व आराम मे निमग्न रहोगे?

———

पाँचवाँ प्रकरण

वासना और प्रेम

नवयुवको, खबरदार ! भोग विलास से बचे रहो; और प्रेम के चक्कर मे न पड़ो। यदि तुम इस फदे मे पड़े तो तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा।

उसके क्षोभ से अधे होने के कारण तुम विनाश को दौड़ कर स्वयं मोल लोगे। इसलिए उस पर दिल न लगाओ, और न उसके मोहक जाल में पडकर अपनी आत्मा का बलिदान करो।

नहीं तो सुखसागर को भरने वाला आरोग्यता का स्रोत शीघ्र ही सूख जायगा और आनन्द का झरना निःशेष हो जायगा। तरुण अवस्था ही मे तुम बुड्ढे हो जाओगे, और जीवन के प्रभात काल ही मे तुम्हारी आयु का सूर्य अस्त हो जायगा।

परन्तु जब सद्गुण और विनय किसी स्त्री के सौन्दर्य को बढाते हैं, तब उसकी प्रभा आकाशस्थ तारो की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल हो जाती है और उसकी शक्ति को कोई रोक नही सकता।

उसका हँसना कमल को भी मात करता है; उसका अन्तःकरण निष्कपट, शुद्ध और सत्यपूर्ण होता है; उसकी आँखे भोली भाली होती हैं, उसके मुख के चुम्बन शहद से भी अधिक मीठे होते हैं, और होठों से सुगन्धि निकलती है।

इस प्रकार के मृदु प्रेम को हृदय तल पर स्थान देने में कोई हर्ज नहीं है। उस पर प्रेम की पवित्र और उज्ज्वल ज्योति तुम्हारे हृदय को उदार बनावेगी और उसे इस योग्य कर देगी कि उसमे सच्चे और शुद्ध प्रेम के चिन्ह उमट सके।

तीसरा खण्ड

पहला प्रकरण

स्त्री

ऐ सुन्दरी, बुद्धिमत्ता की बातें सुन और उन्हे अपने हृदय में स्थान दे। मन के सौन्दर्य से तेरे शरीर की काति बढ़ेगी। और गुलाब के सदृश तेरी सुन्दरता कुम्हला जाने पर भी अपनी मोहकता ज्यो की त्यों क़ायम रखेगी।

तेरी युवा अवस्था में, अथवा जीवन के प्रभात काल मे, जब कि पुरुषो की आँखे तेरी ओर आनन्द से लगे और प्रकृति देवी उनके दृष्टिपात का उद्देश तुझे बतावे, तो उस समय उनकी मोहिनी वाणी पर सावधानी से विश्वास कर, मन को अपने कब्जे मे रख और उनकी फुसलानेवाली बातो पर ध्यान न दे।

याद रख, तू पुरुष की योग्य और सज्ञान सगतिन है; उसके मनोविकार की दासी नहीं है। तेरे जीवन का उद्देश केवल यही नहीं कि तू उसकी कामेच्छा की तृप्ति कर, किन्तु तेरा यह भी कर्तव्य है कि जब वह कष्ट में हो, तो उसकी सहायता कर, धैर्य दे, और सारी चिन्ताओं को मधुर भाषण द्वारा दूर कर।

मनुष्य को अपनी ओर कौन खींच ले जाती है ? उसको अपने प्रेम-पाश से जकड़ कर उसके हृदय मे कौन अपना निवास स्थान बनाती है ?

सुगृहिणी

सुगृहिणी का मन निष्कपट होता है; उसके गालों पर विनय की आभा झलकती है। वह सर्वदा काम में लगी रहती है, खाली नहीं बैठती। उसके वस्त्र स्वच्छ होते हैं; वह मिताहारी, नम्र और सौम्य होती है। वह बुलबुल की तरह बोलती है; और उसके मुख से फूल झड़ते हैं।

उसके शब्दों मे बडी मोहकता होती है; और वह जब उत्तर देती है तो सचाई और नम्रता के साथ देती है। शरण जाना और आज्ञा पालन ये उसके जीवनोद्देश्य हैं। और इन्हीं के उपलक्ष मे शाति और सुख उसे पुरस्कार मिलते हैं।

दूरदर्शिता उसके आगे चलती है और सदाचार उसके दाहिने हाथ की ओर रहता है। उसके आखों में ममता और प्रीति रहती है, विवेक दड लिये उसकी भौहों पर बैठा रहता है। उसके सद्गुणो के भय से दुराचारी मनुष्य की जिह्वा उसके सामने नहीं खुलती।

निन्दक जब अड़ोसी पड़ोसियों के दूषण निकाल कर उनकी निन्दा मे डूबे रहते हैं तो वह अपनी उदारता के कारण मुँह पर हाथ धरे चुपचाप बैठी रहती हैं। उसके हृदय मन्दिर मे सज्जनता होने के कारण उसे दूसरों के अवगुण नही दिखलाई पड़ते।

सुखी हैं वे मनुष्य, जिनको ऐसी स्त्रिया मिलती हैं, और सुखी हैं वे बालक जिन्हें ऐसी स्त्रियों को माता कहने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

वह जहा रहती है वहाँ शाति वास करती है। वह विवेक के साथ हुक्म देती है और उसका पालन होता है। वह प्रातःकाल उठकर अपने घरेलू मामलों पर विचार करती है और प्रत्येक को उसकी योग्यता के अनुसार काम सौपती है।

अपने कुटम्ब का प्रबन्ध करने ही में उसे आनन्द मिलता है। इसी प्रकार के कार्य्यों मे उसकी सारी शक्ति खर्च होती है। वह किफायत से रहती और अपने घर को साफ सुथरा रखती है। उसके प्रबन्ध की उत्तमता उसके पति का भूषण है। स्त्री की प्रशसा सुन कर पति को भी भीतर ही भीतर बड़ा आनन्द होता है।

वह अपने बच्चों के मन में चातुर्य्य की बाते कूट कूट कर भर देती है, और स्वयं अपना उत्तम आदर्श उनके सामने रख कर उनका

आचरण दुरुस्त करती है। उसकी आज्ञा ही बच्चों का सर्वस्व है और उसके केवल संकेत मात्र से वे उसका पालन करते हैं।

उसके मुँह से शब्द निकला नहीं कि नौकरों ने झट उसका पालन किया नहीं। उसने इशारा किया और काम हुआ; कारण इसका यह है कि नौकर उसके प्रेम रज्जु में बँधे रहते हैं। दयालु होने के कारण उसका काम और अधिक चौकसी से होता है।

ऐश्वर्य्य पाकर वह फूलती नहीं। आपत्ति का मुक़ाबिला वह बड़े धैर्य्य से करती है। उसकी सहायता से पति का दुःख हलका हो जाता है और उसकी तीव्रता कम हो जाती है। वह अपने हृदय को स्त्री के हृदय में रखता है, और ऐसा करने से उसके मन को शांति मिलती है।

ऐसी साध्वी को जिसने भार्य्या बनाया है, वह सचमुच सुखी है, और ऐसी साध्वी को 'माता' कह कर जो पुकारता है वह बच्चा धन्य है।

चौथा खण्ड

कौटुम्बिक सम्बन्ध

पहिला प्रकरण

पति

हे नवयुवक ! विवाह करके ईश्वर की आज्ञा पालन कर और समाज का एक विश्वस्त सभासद बन। बड़ी सावधानी से स्त्री पसन्द कर, जल्दी करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि वर्तमान चुनाव पर ही तेरा भावी सुख अवलम्बित है।

यदि कोई स्त्री वस्त्राभूषण सँवारने मे अधिक समय नष्ट करती हो; यदि उसे अपनी सुन्दरता का घमड हो और आत्म-प्रशसा ही मे आनन्द मानती हो, यदि वह ठट्ठा मार कर हँसती हो और जोर जोर से बातें करती हो, यदि उसका पैर अपने बाप के घर न लगता हो और अन्य पुरुषों पर उसकी दृष्टि भटकती रहती हो तो सुन्दरता आकाशस्थ चन्द्र की तरह भले ही हो किन्तु तू उसकी ओर से अपनी दृष्टि खींच ले। जिस मार्ग मे होकर वह जाय उस मार्ग से न चल, और कल्पनाजन्य विचारों में पड़ कर अपनी आत्मा को दु.ख न दे।

परन्तु यदि उसका हृदय कोमल और आचरण पवित्र हो, यदि उसका मन सुशिक्षित और रूप तेरी रुचि के अनुकूल हो तो उसके घर को अपना ही घर समझ। वह तेरी मैत्रिणी, जीवन की सगतिन और हृदय की स्वामिनी होने योग्य है। उसे ईश्वरदत्त प्रसाद समझ कर उसका पालन कर; और उसके साथ ही ऐसा बर्ताव कर कि वह तेरी ेमिका बनी रहे।

यह तेरे घर की मालकिन है। इसलिए उसको सन्मान की दृष्टि से देख, ताकि तेरे नौकर उसकी आज्ञा का पालन करें। बिना कारण उसकी आकांक्षाओं का विरोध न कर। चूंकि वह तेरे दुःख मे साथ देती है इसलिए तू अपने सुख मे उसे अपना साथी बना।

उसका अपराध बड़ी शांति के साथ उसको समझा दे। कठोरता के साथ अपनी आज्ञा का पालन उससे न करा। अपनी गुह्य बातें उसके हृदय में भर, उसकी सलाहमसलहत निष्कपट होगी। उससे तुझे धोखा न होगा; कुकर्मी बनकर उसे धोखा न दे क्योंकि वह तेरे बच्चों की मा है।

जब वह बीमार पड़े और शारीरिक व्यथा से पीड़ित हो, तो अपनी दया से उसका कष्ट हलका कर। यदि तू एक बार भी दया और प्रेम की दृष्टि से देखेगा तो उसका दुःख कम होगा और वह दृष्टि उसके लिए दस वैद्यो से भी अधिक गुणकारी होगी।

स्त्री जाति की कोमलता और उसके शरीर के नाजुकपन पर ध्यान दे। वह अबला है, अतएव उसके साथ निर्दयता का वर्ताव न कर। हा, स्वय अपने अवगुणो की याद अवश्य रख।

दूसरा प्रकरण

पिता

तू अब पिता बना, इसलिए अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दे। जिस प्राणी को तूने उत्पन्न किया है उसका पोषण करना तेरा कर्तव्य है। तेरा लड़का तेरी कीर्ति फैलावेगा अथवा तेरे नाम पर धब्बा लगावेगा, समाज का उपयोगी सभासद होगा अथवा भार-स्वरूप बन जायगा, यह सब तुझी पर निर्भर है।

छुटपन ही से उसे उपदेश दे, और सचाई के सिद्धान्त उसके मन पर अंकित कर। उसकी चित्तवृत्ति पर ध्यान रख। बाल्यावस्था ही से उसे सन्मार्ग पर ला। उसकी आदतो पर भी ध्यान रख, ऐसा न हो, ज्यों २ उसकी आयु बढ़ती जाय, त्यो २ वह बुरी आदतो मे फँसता जाय। इस प्रकार की देख रेख से वह पर्वत पर के वृक्ष की तरह बढ़ेगा और उसका सिर अन्य वृक्षो की अपेक्षा ऊँचा रहेगा।

दुष्ट पुत्र से पिता की निन्दा होती हैं और सदाचारी पुत्र से उसकी कीर्ति फैलती है। ज़मीन तेरी है, उसको बजर न छोड। जैसा बीज तू उसमे बोवेगा वैसा ही फल तुझे मिलेगा।

यदि आज्ञा पालन की शिक्षा देगा तो वह तेरा गुण फैलावेगा, यदि विनय का पाठ पढावेगा तो ससार मे उसे लज्जित न होना पड़ेगा। यदि कृतज्ञता का शिक्षण देगा तो उसका लाभ उसे मिलेगा। यदि दान की ओर उसके चित्त को लगावेगा तो लोग उसे प्यार करेगे। यदि सयमी बनावेगा तो वह निरोग रहेगा। यदि दूरदर्शी बनावेगा तो भाग्यशाली होगा। यदि न्याय का पाठ पढ़ावेगा तो लोग उसका सन्मान करेगे। यदि निष्कपट बनावेगा तो उसका हृदय उसे काटेगा नही। यदि परिश्रमी बनावेगा तो धनाढ्य होगा, यदि दूसरों के साथ उपकार करना सिखावेगा तो उसके विचार उच्च होगे। यदि उसे विज्ञान की शिक्षा देगा तो उसका जीवन सफल होगा। और यदि धार्मिक शिक्षा देगा तो उसकी सुख से मृत्यु होगी। साराश यह कि आदर्श बनकर जैसी तू शिक्षा देगा वैसा ही वह बनेगा।

तीसरा प्रकरण

पुत्र

ईश्वर ने जिन प्राणियो को उत्पन्न किया है, मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उनसे बुद्धिमानी सीखे और जो शिक्षा वे दे उन्हें अपने जीवन मे चरितार्थ करने का प्रयत्न करे।

ऐ मेरे पुत्र, ज़रा जगल मे जाकर वहा के सारस को देख और उसे अपने साथ सभाषण करने दे। कैसे प्रेम से वह अपने वृद्ध पिता को पखों मे ले जाता है और सुरक्षित स्थान मे उसे बैठा कर दाना पानी का कैसा उत्तम प्रबन्ध करता है।

पितृभक्ति, सूर्य्य को समर्पित किये हुये ईरान देश की धूप से भी अधिक मधुर है और पश्चिम दिशा की ओर बहने वाली हवाओं द्वारा प्रसारित अरब देश के मसालों की सुगधि से भी अधिक आनन्द-दायक है।

अतएव तू अपने पिता का कृतज्ञ रह क्योंकि उसने तुझे पैदा किया है। अपनी माता को भी तू न भूल क्योंकि उसने तुझे ९ महीने अपने पेट मे रक्खा।

उनकी बातों को सुन क्योंकि वे तेरे लाभ से लिए कही जा रही हैं। तेरा पिता यदि तुझे बुरा भला कहे तो उसे भी कान लगा कर सुन क्योंकि उसने प्रेम से ऐसा कहा है, किसी अन्योद्देश मे नहीं। उसने तेरी भलाई के लिये राते जागकर व्यतीत कर दीं; उसने तेरे आराम के लिए बडा परिश्रम किया इसलिए उसकी अवस्था का मान रख; उसके सफेद बालों का अपमान न कर।

अपनी दुर्बल बाल्यावस्था और युवावस्था के उद्धतपने को न भूल; अपने वृद्ध पिता के दोषों पर ध्यान न दे, बुढ़ापे में उनकी सब प्रकार से सहायता कर।

इस प्रकार वे सुख और शाति से इस मनुष्य शरीर को छोड़ेगे। -और जिस प्रकार की पितृभक्ति और प्रेम तू अपने पिता पर करेगा उसी प्रकार की पितृभक्ति और प्रेम तेरी सन्तान तेरे साथ करेगी।

चौथा प्रकरण

सहोदर भाई

हे सहोदर भाइयो! तुम एक बाप की सन्तान हो; उसने बड़ी सावधानी से तुम्हारा सगोपन किया है तुम लोगों का भरण पोषण भी एक ही मा के दूध से हुआ है। इसलिये तुम लोग प्रेम-रज्जु में एक दूसरे से बॅधकर रहो ताकि तुम्हारे पितृ गृह में सुख और शाति का वास हो। और जब तुम एक दूसरे से अलग हो तो अपने प्रेम और एकता के बन्धन को न भूलो। परिवार वालों की सहायता करना अपना पहिला कर्तव्य समझो।

यदि तुम्हारा भाई विपत्ति मे पड गया है तो उसकी सहायता करो, यदि तुम्हारी बहिन सकट में पड़ गई है तो उसकी भी मदद करो।

इस प्रकार तुम्हारे पिता की सपत्ति से घराने भर का लाभ होगा और उसकी श्रद्धा का भाव सदैव तुम सब मे प्रेम की वृद्धि करता रहेगा।

पांचवां खण्ड
ईश्वर की करनी
अथवा
मनुष्यों में दैविक अंतर

—:o:—

पहला प्रकरण
चतुर और मूर्ख

बुद्धि भी परमात्मा की देन है। जिसको जितना उचित समझता है उसको उतना ही उसकी योग्यतानुसार वह देता है।

जिसको ईश्वर ने बुद्धि दी है, जिसके हृदय मे उसने ज्ञान का प्रकाश डाला है, उसको उचित है कि वह उससे मूर्खों को उपदेश करे और स्वय अपने ज्ञान की वृद्धि के लिये भी विचार रूप मे उसे अपने बड़ो के सामने रक्खे।

सच्चे ज्ञानी मे अज्ञानी को अपेक्षा उद्दडता कम होती है। चतुर मनुष्य के मन में वारम्बार शकायें आती रहती हैं; जिनको परख कर वह अपने विचारों को अपने अनुकूल स्वरूप देता रहता है। परन्तु मूर्ख मनुष्य सदैव हठी होता है, उसके मन में किसी प्रकार की शका नही आती; वह सब कुछ जानता है—हाँ अज्ञानी रहता है तो सिर्फ अपनी मूर्खता के विषय मे।

पोली ऐंठ निन्दनीय है और अधिक बडबड़ाना मूर्खता का लक्षण है, तथापि शातिपूर्वक मूर्खों का उद्धतपन सहन करना और उनकी मूर्खता पर सहानुभूति प्रगट करना बुद्धिमानी का काम है।

अभिमान मे आकर फूल न जाओ और न अपनी प्रखर बुद्धि का घमड करो; क्योंकि मनुष्य का ज्ञान बहुत ही सकुचित है।

चतुर मनुष्य को अपने दोष मालूम रहते हैं, अतएव वह नम्र होता है, और स्वय भला बनने के लिये प्रयत्न करता रहता है।

परन्तु मूर्ख अपने मन प्रवाह की हलकी कंकड़ियों को देखकर ही प्रसन्न होता रहता है। वह उनको निकाल २ कर मोती की तरह दिखलाता है और जब दूसरे लोग उसकी प्रशसा कर देते हैं तो वह बहुत खुश होता है। निरुपयोगी बातों के ज्ञान पर वह बड़ा अभिमान मानता है पर वह यह नही सोचता कि न जाने मै अपनी मूर्खता पर कहा लज्जित होऊँ।

यदि उसे बुद्धिमानी के रास्ते मे लगा दीजिये तब भी वह मूर्खता के मार्ग मे चलने लगता है किन्तु इस परिश्रम का पुरस्कार उसे क्या मिलता है? निन्दा और निराशा।

परन्तु बुद्धिमान मनुष्य ज्ञानोपार्जन करता हुआ अपने को शिक्षित करता है, कलाकौशल की उन्नति करने मे उसे बड़ा आनन्द मिलता है, और उससे समाज को लाभ पहुँचने के कारण उसका बड़ा मान होता है। सद्‌गुणों का प्राप्त करना ही वह श्रेष्ठ ज्ञान समझता है और सच्चा सुख किस प्रकार मिलता है इसी का अध्ययन वह जीवन पर्यन्त करता रहता है।

दूसरा प्रकरण

धनी और निर्धन

जिस पुरुष को ईश्वर ने सपत्ति और उसके उचित उपयोग करने की बुद्धि दी है उसी को ईश्वर का प्यारा और कीर्तिमान समझना चाहिये।

अपनी संपति देखकर वह बड़ा प्रसन्न होता है क्योंकि इसी के कारण वह दूसरों का उपकार कर सकता है। वह पीड़ितो की रक्षा करता है

और बलवानों को निर्बलों के साथ जुल्म नहीं करने देता। जो लोग दया के पात्र हैं उनको वह जानता है और उनकी आवश्यकताओं का विचार कर निःस्वार्थ भाव से बुद्धिमत्ता पूर्वक वह उनकी सहायता करता है। वह गुणियों को उत्तेजित करता है और प्रत्येक उपयोगी विषय की उन्नति उदारता के साथ करता है।

वह बड़े २ व्यवसाय के काम प्रारम्भ करता है जिससे उसके देश के मजदूरों को मजदूरी मिलती है, और देश धन सम्पन्न होता है। वह नई २ युक्तियाँ सोच कर निकालता है जिससे कला-कौशल की वृद्धि होती है। आवश्यकता से अधिक भोजन के पदार्थ वह अपने दीन पडोसियों के समझता है और इसलिए उन्हे वह देता है।

ऐश्वर्य्य के कारण उसके मन की उदारता कम नहीं होती और इसलिये वह अपने द्रव्य को देख देखकर प्रसन्न होता है। उसकी प्रसन्नता बिल्कुल निर्दोष होती है।

परन्तु धिक्कार है उस मनुष्य को जो विपुल धन सञ्चित करके अपने पास रक्खे रहना ही पसन्द करता है, वह गरीब गुरबो को चूसता रहता है और उनके श्रम और कष्ट का विचार नहीं करता।

अत्याचार द्वारा अपनी उन्नति करने मे उसे कुछ भी खेद नहीं होता और भाइयो का विनाश देखकर उसका दिल नहीं दहलता। अनाथों के आँसुओ को वह दूध की तरह पी जाता है और विधवाओ का क्रन्दन उसके कानो को कुछ भी कष्ट नही देता। धन के लोभ से उसका हृदय कठोर हो जाता है इसलिये दूसरों के दुःख का उस पर कुछ भी प्रभाव नहीं पडता।

परन्तु इस पाप का पिचाश उसका पीछा नही छोड़ता। वह उसे कभी चैन नहीं लेने देता। दूसरों पर वह जो अत्याचार करता है उसकी

चिन्ता उसे सदैव सताये रहती है और पर-धनहरण का दुर्व्यसन उसे सदैव तग दिये रहता है।

अफसोस जो पीड़ा उसके हृदय के भीतर ही भीतर होती है, उसके सामने दरिद्रता का दुःख कोई चीज़ नहीं।

ग़रीबो को आनन्द मनाना चाहिये, इसके कई कारण हैं:—उसको खुशामदी और खाऊ भाई सदैव नहीं घेरे रहते, अतएव वह अपनी नमक रोटी सुख और सन्तोष के साथ खा सकता है। बहुत से नौकर चाकरों की हैरानी उसे नहीं रहती। और न याचक लोग उसे कष्ट देने को आते हैं। धनवानों के उत्तम भोजन चूँकि उसे नहीं मिलते, अतएव वह रोगो से भी बचा रहता है। उसे रूखा सूखा अन्न और कुँए का पानी अच्छा लगता है। इसके सामने वह बड़े स्वादिष्ट खाद्य और पेय पदार्थों को तुच्छ समझता है।

परिश्रम करने के कारण उसका स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है। और उसे वह गहरी नींद आती है जो सेज पर लेटने वाले सुस्त धनियो को मुअस्सर तक नहीं होती।

वह बडी नम्रता के साथ अपनी इच्छाओ को सीमाबद्ध कर लेता है। और सम्पति तथा शान शौक़त की अपेक्षा सन्तोप रूपी द्रव्य का सुख उसे अधिक अच्छा मालूम होता है।

इसलिये अमीरों को चाहिये कि वे धन से फूल न जायँ और न ग़रीब दरिद्र होने के कारण दुःख करे। परम पिता परमेश्वर का उद्देश्य दोनो को सुखी रखना ही है।

———

तीसरा प्रकरण

स्वामी और सेवक

ऐ मनुष्य ! पराधीनता के लिये बड बड़ न कर । समझ ले कि यह भी एक परमात्मा की योजना है । इससे अनेकों लाभ हैं । पराधीनता तुमको जीवन की चिन्ताओं से बचाये रहती है ।

स्वामिभक्ति से सेवक की प्रतिष्ठा होती है, और आज्ञापालन ही उसका सर्वश्रेष्ठ गुण है । इसलिए धनियो के वाक् प्रहार को शाति से सह लो । और जब वह तुम्हें डाटे तो उत्तर न दो, तुम्हारी यह सहनशीलता स्वामी को नही भूल सकती । उसकी भलाई करने के लिए सदैव तैय्यार रहो । उसका काम परिश्रम के साथ करो । जिस बात के लिए वह तुम्हारा विश्वास करे उसमे विश्वासघात न करो । सेवक के समय और परिश्रम पर मालिक का अधिकार रहता है, उसके लिए वह वेतन देता है इसलिए उसे धोखा न दो ।

और तू जो अपने को मालिक कहता है, यदि चाहता है कि सेवक भी तुझ पर भक्ति रखे तो उसके साथ न्याय का वर्ताव कर । और यदि चाहता है कि वे तेरी आज्ञा का पालन करे तो सोच समझ कर हुक्म दे ।

जोश आख़िर मनुष्य मे होता है । सख्ती नौकर के हृदय मे भय भले ही उत्पन्न कर दे किन्तु प्रेम पैदा नहीं कर सकती, दयालु रहो किन्तु कभी २ डाट डपट दिया करो । बुद्धिमानी से काम लो, किन्तु कभी २ जतला दो कि हम मालिक हैं और तू नौकर है । इस प्रकार तेरे उपालम्भ का सेवक के हृदय पर असर पड़ेगा और कर्तव्य पालन में उसे आनन्द आवेगा ।

सेवक तेरी सेवा कृतज्ञता पूर्वक भक्ति के साथ करेगा, प्रसन्नता

पूर्वक प्यार के साथ तेरी आज्ञा पालन करेगा परन्तु तू भी उसके बदले मे उचित पुरस्कार देने से न चूक।

चौथा प्रकरण

शासक और शासित

ऐ परमेश्वर के प्यारे, तुझको मानवी प्राणियों ने अपने ऊपर हुकूमत करने के लिए राजसिंहासन पर बैठाया है। इसलिए अपने पद के ऐश्वर्य्य की अपेक्षा तुझे इतना बडा गोरव देने वाले उन लोगो के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिक विचार करना चाहिये।

अमूल्य वस्त्रों से सुशोभित करके तू राज्यसिंहासन पर बैठाया गया है, तेरे सर पर राजमुकुट रक्खा गया है, राजदड तेरे हाथ मे दिया गया है, ये राज्य चिन्ह क्या तेरे व्यक्तिगत लाभ के लिए दिये हैं! नही। ये तुझे प्रजा-हित करने के लिए सौंपे गये हैं। प्रजा के कल्याण मे ही राजा का गौरव है, क्योकि उसका अधिकार और राज्य-पद प्रजा की इच्छा ही पर अवलम्बित है।

अपने पद के ऐश्वर्य्य से किसी उत्तम बादशाह का हृदय उदार होता है। वह बड़े बधान बाधता है और नये नये काम अपनी शक्ति के अनुसार खोलता है। वह अपने राज्य के चतुर मनुष्यो की सभा करता है, उनसे सलाह मशविरा करता है और उनकी बातों को मानता है। वह अपने चातुर्य्य से लोगों को देखते ही उनकी योग्यता समझ लेता है, और उसी के अनुसार उन्हें काम देता है। उनके न्यायाधीश न्यायी होते हैं, उसके मत्री चतुर होते हैं, और उसके निकटवर्ती उसे धोखा नहीं दे सकते।

उसकी छत्रछाया में कला-कौशल और सब प्रकार के विज्ञान की उन्नति होती है। विद्वान और चतुर लोगों का सग करना उसे अच्छा मालूम होता है, जिससे उसकी महत्वाकाक्षा की वृद्धि होती है और उन सब के परिश्रम से राज्य का गौरव और अधिक बढ़ जाता है।

व्यापार वृद्धि करने वाले सौदागरो के उत्साह को, परिश्रम करके भूमि को उपजाऊ बनाने वाले किसानो की चतुरता को, कारीगरों की कारीगरी को; और विद्वानों की योग्यता को मान देकर वह सबो को उदारता के साथ पुरस्कार देता है।

वह नई बस्तियाँ बसाता है, मज़बूत जहाज बनवाता है, आराम के लिये नदियों से नहरे निकलवाता है, और सुभीते के लिये बन्दरगाह बनवाता है। परिणाम यह होता है कि उसकी प्रजा वैभवशाली और राज्य सुदृढ़ हो जाता है।

वह राज्यनियम न्याय और चातुर्य से बनाता है, उसकी प्रजा आनन्द से अपने परिश्रम का फल भोगती है। राज्य नियमो से उनके मार्ग मे किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ने पाती, उलटे उनके अनुसार चलने से ही उन्हें सुख मिलता है।

वह दया को साथ लेता हुआ न्याय करता है, परन्तु अपराधियों को निष्पक्षपात और कड़ाई के साथ दंड देता है। अपनी प्रजा की शिकायतों को सुनने के लिये वह सदैव तय्यार रहता है और अत्याचारियों के अत्याचार से उन्हें बचाता है। उसकी प्रजा इसीलिये पितृवत मान और प्रेम की दृष्टि से उसे देखती है और अपने सब सुखों का उसे रक्षक समझती है। लोगों का प्रेम उसके हृदय मे प्रजा वात्सल्य उत्पन्न करता है और फिर वह उनके सुख की रक्षा करने का बराबर प्रयत्न करता रहता है। उनके दिलों मे उसके प्रति कोई शिकायत नहीं रह जाती और शत्रु फिर उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

उसकी प्रजा उसके सब कामों में राजभक्ति और दृढ़ता से सहायता करती है। वह लोहे की दीवाल की तरह उसकी रक्षा करती है। शत्रु की सेना उसके सामने इस प्रकार नहीं ठहर सकती जिस प्रकार हवा के सामने भूसा।

ऐसे राजा की प्रजा सुरक्षित और सुखी रहती है; और यश और सामर्थ्य उसके सिंहासन के चारों ओर हाथ जोड़े खड़े रहते हैं।

— —

छठवां खण्ड

सामाजिक कर्तव्य

पहला प्रकरण

परहित बुद्धि

जब तू अपनी आवश्यकताओं और कमी पर विचार करने बैठे तो ऐ मनुष्य प्राणी ! उस परमात्मा का उपकार न भूल जिसने तुझे बुद्धि और कथन शक्ति दी है और जिसने पारस्परिक सहायता और अहसान करने के लिये तुझे समाज मे स्थान दिया है।

अन्न, वस्त्र, घर, आपत्तियों से बचाव, जीवन का सुख और चैन ये सब तुझे दूसरों की सहायता से मिले हैं। समाज के बिना अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकते थे। इसलिये तेरा कर्तव्य है कि जिस प्रकार तू चाहता है कि दूसरे हमारे मित्र बने रहे उसी प्रकार तू भी दूसरों का मित्र बना रह।

जिस प्रकार गुलाब से मधुर सुगन्धि आप से आप निकलती है उसी प्रकार परोपकारी मनुष्य का हृदय अच्छे काम की ओर आप से आप लगा रहता है। कहने की ज़रूरत नही पड़ती। यह अपने हृदय मे सुख और शाति का अनुभव करता है और पडोसियो की बढ़ती देखकर खुश होता है। वह किसी की निन्दा नहीं सुनता और दूसरों की भूलों और दुर्गुणों को देखकर उसे दु:ख होता है।

उसकी इच्छा सदा दूसरों की भलाई करने की ओर रहती है और उसके लिए वह अवसर ढूढता फिरता है। दूसरों का कष्ट दूर करके वह शाति उपलब्ध करता है।

मन विशाल होने के कारण वह परमेश्वर से यही मनाता है कि सब को सुख मिले और हृदय की उदारता के कारण उसे सुलभ करने का प्रयत्न करता है।

दूसरा प्रकरण

न्याय

समाज की शाति न्याय पर अवलम्बित है और मनुष्यों का सुख अपनी सपति के उपभोग करने पर निर्भर है। इसलिए अपनी वासनाओं को मर्यादा के भीतर रक्खो और न्याय से उनकी पूर्ति करो।

अपने पड़ोसी की सम्पति पर दात न लगाओ। जितनी उसकी जायदाद है उसे सुरक्षित रहने दो। लालच अथवा क्रोध के वशीभूत होकर उसकी जान लेने पर उतारू न हो जाओ। उसके आचरण पर धब्बा न लगाओ और न उनके विरुद्ध झूठी गवाही दो। उसकी स्त्री के साथ भोग करने की कोशिश न करो और उनके सेवकों को रुपया पैसा देकर न इस बात की चेष्टा करो कि वे अपने मालिक को छोड़ दें। इससे उसके दिल को बड़ा दुःख होगा जिसको तुम निवारण नहीं कर सकते।

दूसरों के साथ निष्पक्षपात और न्याय का बर्ताव करो। और उनके साथ वैसा ही बर्ताव करो जैसा कि तुम अपने साथ चाहते हो।

जो तुम्हारा विश्वास करे उसका साथ दो, जो तुम पर निर्भर रहे उसे धोखा न दो। स्मरण रहे परमात्मा की दृष्टि मे चोरी करना इतना बड़ा पाप नहीं है जितना बड़ा पाप विश्वासघात करना है।

दीन दुःखियो पर अत्याचार न करो, और न मज़दूरों की मज़दूरी देने मे टाल मटोल करो। नफे के साथ अपनी वस्तुए बेचते समय अन्त.करण की आवाज सुनकर थोडे ही लाभ पर सतुष्ट रहो। ग्राहकों को भोला भाला समझकर उनको मूड़ो नहीं।

यदि तुमने किसी से ऋण लिया है तो उसे चुका दो। महाजन ने तुम्हें तुम्हारी साख पर रुपये उधार दिये थे। रुपये न चुकाना नीचता ९ अन्याय है।

साराश यह है कि प्रत्येक मनुष्य समाज का एक अश है। उसे अपने हृदय की छान बीन करके अपनी स्मरण शक्ति से काम लेना चाहिये। और यदि उसे मालूम हो कि मैने उपरोक्त बातों मे से किसी बात को उल्लघन किया है तो उसे उसके लिये लज्जित और दुखित होकर भविष्य मे उनके सुधारने का यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये।

तीसरा प्रकरण

परोपकार

जिसने अपने हृदय मे परोपकार का बीज आरोपण किया है उस पुरुष को धन्य है क्योंकि परोपकार से धर्म और प्रेम उत्पन्न होते हैं।

परोपकारी मनुष्य के हृदय सरोवर से भलाई की नदियाँ निकल कर मनुष्य मात्र का उपकार करती हैं। सकट के समय वह गरीबों की सहायता करता है और समाज का उत्कर्ष करने मे उसे आनन्द मिलता है।

वह अपने पड़ोसियो की निन्दा नहीं करता, डाह और मत्सरता की बातो पर विश्वास नही करता और किसी की चुग़ली नहीं खाता। वह दूसरो के अपराधों को क्षमा करके उन्हे भूल जाता है। बदला और द्वेष को उसके हृदय मे जगह नहीं मिलती। बुराई के बदले मे वह बुराई नहीं करता। वह अपने शत्रुओ से घृणा नही करता बल्कि प्रेमभाव से उनके अपराधों को भूल जाता है।

दूसरों के दुःख और चिन्ताओ को देख कर परोपकारी मनुष्य का हृदय पसीज उठता है। वह उनकी आपत्तियों को दूर करने का प्रयत्न करता है और यदि सफलता हो गई तो उससे जो आनन्द मिलता है उसे वह अपने लिये पुरस्कार समझता है।

वह, क्रोधी मनुष्य के क्रोध को शात करके झगड़े को तै कर देता है और इस प्रकार आगामी वैर-भाव और लड़ाई झगड़े को रोकता है।

वह अपने पड़ोसियों मे शाति और परस्पर स्नेह भाव की वृद्धि करता है और इसी कारण लोग उसकी प्रशसा करके उसे आशीर्वाद देते हैं।

चौथा प्रकरण

कृतज्ञता

जिस प्रकार रस वृक्ष की शाखाओं से फैल कर फिर उसी जड़ में लौट जाता है जहा से वह आया था; अथवा जिस प्रकार नदी का पानी जिस समुद्र से नदी को मिलता है उसी समुद्र मे फिर चला जाता है उसी प्रकार कृतज्ञ मनुष्य का हृदय अपने उपकारकर्त्ता की ओर जाता रहता है। उसके उपकार के बदले उपकार करने ही में उसे आनन्द मिलता है।

वह दूसरों के उपकार को प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार करता है और अपने उपकर्त्ता को सत्कार और प्रेम की दृष्टि से देखता है।

और यदि उस उपकार का बदला चुकाना उसकी शक्ति के बाहर हुआ तो भी उसको सारे जीवन वह कभी नही भूलता।

कृतज्ञ पुरुष आकाश के बादल की नाईं है जो पानी बरसा कर पृथ्वी के फल, फूल, तरकारियों की वृद्धि करता है। प्रत्युत कृतघ्नी का हृदय बालू की मरुभूमि की तरह है। वह बरसे हुए पानी को सोख कर अपने उदर मे रख छोड़ती है। कुछ पैदा करना नही चाहती।

अपने कल्याणकर्त्ता से डाह न करो और न उसके किये हुए उपकार को छिपाने का प्रयत्न करो। क्योंकि यद्यपि उपकारबद्ध होने की अपेक्षा उपकार करना अच्छा है, यद्यपि उपकार से हमारी प्रशंसा होती है तथापि कृतज्ञ पुरुष की नम्रता हृदय को द्रवीभूत करती है और ईश्वर और मनुष्य दोनों को भली मालूम होती है।

परन्तु घमडी मनुष्य के उपकार को ग्रहण न करो और न स्वार्थी और न लोभी मनुष्यों के साथ उपकार करो। क्योंकि घमडी का

घमंड तुम को लज्जित करेगा और लोभी और मतलबी मनुष्य का स्वार्थ कभी दूर होने का नहीं।

पांचवां प्रकरण

निष्कपटता

ऐ मनुष्य, तू जो सचाई की केवल सुन्दरता पर भूला हुआ है और उसके ऊपरी गुणों पर मोहित है वास्तव में तुम्हें उसके असली स्वरूप पर श्रद्धा रखनी चाहिये। उसे कभी छोड़ना नहीं चाहिये क्योंकि सचाई पर लगे रहने से तेरा सत्कार होगा।

खरा मनुष्य दिल से बोलता है, धोखा और दग़ाबाजी उसकी बातो मे नहीं पाये जाते। झूठ बोलने मे उसे लज्जा आती है और वह सिर नीचा कर लेता है परन्तु सत्य बोलते समय उसकी दृष्टि स्थिर और निश्चल रहती है।

वह अपने ऐसे निष्कपट मनुष्यों का सत्कार करता है। परन्तु ढोगियों के ढोंग देखते ही उसे घृणा मालूम होती है। उसके आचरण मे सुसबद्धता होने के कारण वह कभी नहीं घबड़ाता, सच बोलने से नही दबता, किन्तु झूठ बोलने से घबडाता है। कपट का व्यवहार करना वह नीच समझता है और जो वह दिल मे सोचता है वही उसके मुख से निकलता है। वह दूरदर्शिता और सावधानी से अपना मुह खोलता है। वह सत्य की छानबीन करता है और फिर समझ बूझ कर बोलता है। प्रेमभाव से वह उपदेश करता है। निडर होकर बुरा भला कहता है और जो कहता है उसे पूरा कर दिखाता है।

परन्तु एक ढोगी के विचार उसके हृदय मे छिपे रहते हैं। वह सच बोलने का दम भरता है किन्तु जीवन भर दूसरों को ठगने का प्रयत्न

करता है। वह दुःख में हसता है, आनन्द मे रोता है और उसकी बातें स्पष्ट नहीं होतीं। वह छछूंदर की तरह रात्रि में काम करता है, किसी को मालूम नहीं होता और सोचता है कि मै सुरक्षित हूँ, किन्तु उसका भेद खुल जाता है और फिर उसे अपना मुँह काला करना पडना है। इस प्रकार उसे अपने दिन दुःख के साथ बिताने पडते हैं।

उसके मुँह की बातें उसके दिल की बातो के बिलकुल विरुद्ध रहती हैं। देखने में तो बेचारा बड़ा सीधा सादा और सदाचारी बना रहता है किन्तु हमेशा दूसरों का गला काटने के लिये तैयार रहता है।

हा ! कैसी मूर्खता है जितना प्रयत्न वह दोषों को छिपाने मे करता है उतना उनके हटाने में करे तो उसके सब दोष दूर हो सकते हैं। ऐ ढोंगी मनुष्य अपने को जितने दिन चाहे उतने दिन छिपा ले परन्तु समय आवेगा जब तेरा सच्चा स्वरूप खुल जायगा और बुद्धिमान लोग तुझे देख कर हसेंगे और तेरा तिरस्कार करेंगे।

———

सातवां खण्ड

ईश्वर

ईश्वर एक है। वह सृष्टि का कर्त्ता, (जगतनियता) सर्वशक्तिमान सनातन, और अगम्य है।

सूर्य्य यद्यपि ईश्वर का विशुद्ध प्रतिबिम्ब है परन्तु वह ईश्वर नहीं है। वह अपनी ज्योति से ससार को प्रकाश देता है। उसकी उष्णता से तृण अन्नादि ससार की वस्तुओं को जीवन मिलता है।

जो परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ, मेधावी और दयाशील है केवल उसी की उपासना, आराधना और स्तुति करनी चाहिए और केवल उसी का कृतज्ञ होना चाहिये।

उसने अपने हाथो आकाश रूपी वितान फैलाया है; नक्षत्र ताराग्रहों की चाल निश्चित की है, समुद्र की मर्य्यादा बाँध दी है। जिसका उल्ल-घन वह नही कर सकता और महाभूतो को अपने वश मे रख छोड़ा है।

वह पृथ्वी को हिला देता है जिससे बड़े २ राष्ट्र नष्ट होकर कापने लगते हैं। यह बिजली चमका देता है जिससे दुष्ट घबड़ा जाते हैं। केवल अपनी इच्छा मात्र से वह अनन्त ब्रह्माण्ड की रचना करता है और अपने ही हाथ से उसका लय कर डालता है।

इसलिये उसी सर्वशक्तिमान परमेश्वर के तेज के सामने अपना सर झुकाओ, उसको क्रोधित न करो नहीं तो तुम्हारा नाश हो जायगा।

अपनी उत्पन्न की हुई सब वस्तुओं पर उसकी दृष्टि रहती है और उन पर वह बडी चतुरता के साथ शासन करता है।

उसने ससार के शासन के लिये नियम बनाये हैं। वे भिन्न २ लोगों के लिये भिन्न २ स्वरूप मे हैं और प्रत्येक नियम उसके इच्छानुसार काम करता है।

तेरे दिल की बाते वह जानता रहता है और तेरे इरादे उसे पहिले ही से मालूम रहते हैं। भविष्य की बाते उससे छिपी नही हैं और भाग्य में लिखी हुई बाते उसे मालूम रहती हैं।

उसके सब काम विचित्र हैं। उसके मत्र अचिन्त्य हैं। उसका ज्ञान कल्पनातीत है। इसलिये उसके ज्ञान का सत्कार करो और उसके सर्वश्रेष्ठ शासन को नम्रता के साथ सिर झुकाओ।

परमेश्वर दयालु और दानशील है। उसने दया और वात्सल्यभाव से इस ससार को उत्पन्न किया है। उसकी सुजनता उसके प्रत्येक काम में दिखलाई पड़ती है। वह सम्पत्ति का भण्डार और सिद्धि का केन्द्र है।

सृष्टिमात्र उसकी सुजनता प्रगट करती है। उसके सुख उसका गुणानुवाद गाते हैं। वह सृष्टि को सौन्दर्य्य से विभूषित करता है, अन्न देकर उसका पोषण करता है और पीढी दर पीढी तक आनन्द से उसे क़ायम रखता है।

जब आँख उठाकर हम आकाश की ओर देखते है तब उसका तेज मालूम होता है, जब हम पृथ्वी की ओर देखते हैं पृथ्वी सुजनता से भरी दिखलाई पडती है। पर्वत और घाटियाँ उसकी स्तुति करती हैं और खेत, नदी और जङ्गल उसकी प्रशसा की प्रतिध्वनि करते हैं।

परन्तु ऐ मनुष्य! तुझे उसने अपना एक मुख्य कृपापात्र बना रक्खा है और सब प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ स्थान दिया है। उसने तुझे अपना पद क़ायम रखने के लिये बुद्धि, समाज मे उन्नति करने के लिये वाणी, और उसकी पूर्णता को मनन करने के लिये विचार-शक्ति दी है।

उसने जीवन के नियम इतने अच्छे बनाये हैं और तेरी प्रकृति के अनुसार उसने ऐसे कर्तव्य निश्चित किये हैं कि उन नियमों के पालन करने से ही तुझे सच्चा सुख मिल सकता है इसलिये अनन्यभक्ति के साथ उसके गुण गावो, जिससे तुम्हारा हृदय उसकी कृतज्ञता से पसीजे और आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगे। अपनी वाणी से उसकी स्तुति

करो और ऐसे ऐसे उत्तम काम करो जिससे यह मालूम पड़े कि तुम उसके नियमो का पालन कर रहे हो।

ईश्वर न्यायी और सत्यप्रिय है। इसलिये ससार का न्याय वह सचाई और निष्पक्षपात के साथ करता है। जब उसने अपने नियम सदुद्देश्य और दया के साथ बनाये हैं तो उनके उल्लंघन करने वालो को क्या वह दंड नहीं देगा ?

अरे भाई यदि तुम्हें जल्दी दण्ड न मिले तो यह न सोचो कि ईश्वर का हाथ निर्बल हो गया है और न व्यर्थ की पोली पोली आशा कर के अपने दिल को यह कहकर बहलाओ कि वह हमारे कामों को देख ही नहीं रहा है।

उसकी दृष्टि प्रत्येक अन्तःकरण की बातों पर पड़ती है और वह उन्हें हमेशा याद रखता है। वह न तो मनुष्यों की और न उसकी पद-वियो की ही कुछ परवाह करता है।

इस नश्वर पचभूत शरीर से जब आत्मा निकल बाहर होगी तो ऊँच और नीच, धनवान और निर्धन, बुद्धिमान और मूर्ख अपने अपने कर्म के अनुसार ईश्वर के सामने यथायोग्य फल पावेगे। उसी समय दुर्जन कापेंगे और भयभीत होंगे किंतु सज्जन उसके न्याय से प्रसन्न होंगे।

इसलिये सारे जीवन परमेश्वर से डरते रहो और जो मार्ग उसने तुम्हारे सामने खोल कर रख दिया है उसी पर होकर चलो। विवेक की बातों पर ध्यान दो, सयम से अपना इन्द्रियों को अपने वश में करो, न्याय को अपना पथ-प्रदर्शक बनाओ, उदारता को अपने हृदय मे स्थान दो, और धन्यवाद पूर्वक ईश्वर की भक्ति करो। ऐसा करने से तुम्हें इस लोक और परलोक दोनों मे सुख मिलेगा।

ॐ शातिः शातिः शातिः

उत्तरार्ध

पहला खण्ड

सामान्यतः मनुष्य–प्राणी के विषय में

पहला प्रकरण

मानवी शरीर और उसकी बनावट

मनुष्य-प्राणी निर्बल और अज्ञान है, इसलिये उसे सदैव नम्र रहना चाहिये। वह जिसको ज्ञान कह कर पुकारता है और जिसके लिये वह घमण्ड करता है, सच्चा ज्ञान नहीं है। यदि उसे सच्चे ज्ञान के जानने की इच्छा है, यदि वह जानना चाहता है कि ईश्वरीय शक्ति क्या है तो उसे अपनी शरीर की बनावट का पहिले अवलोकन करना चाहिये।

मनुष्य की उत्पत्ति अद्भुत और भयजनक है इसलिये अपने उत्पन्न-कर्त्ता से भयभीत होता हुआ उसे उसकी प्रशंसा करनी चाहिये और उस पर दृढ़ विश्वास करके आनन्द-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना चाहिये।

हमें ईश्वर ने अन्य प्राणियो की अपेक्षा श्रेष्ठ क्यो बनाया है। इसलिये कि हम उसके कामों को देखकर उनसे शिक्षा ग्रहण कर सके। ऐ मनुष्य प्राणी, भला बतला तो सही, उसकी और उसके कामों की प्रशंसा हमें करना उचित है अथवा नहीं ?

मनुष्य प्राणियों ही मे आन्तरिक चैतन्यता क्यो है ? वह उसे कहाँ से और क्योंकर मिली। विचार करना मांस का धर्म नहीं है, अथवा तर्क करना कुछ हड्डियो का काम नही। सिंह नहीं

जानता कि कीटक मुझे खा जायँगे और बैल को ज्ञात नहीं कि मैं बलि-दान के लिये खिला पिला कर मोटा किया जा रहा हूँ।

अन्य प्राणियों की अपेक्षा तुम मे एक नवीन शक्ति है। यह शक्ति इन्द्रियगोचर ज्ञान की अपेक्षा एक विशेष ज्ञान का परिचय तुम्हारे जड़ शरीर को करा देती है। आइये, विचारे तो सही कि वह कौन सी ऐसी शक्ति है।

उसके निकल जाने पर भी वह शरीर पूर्णावस्था मे बना रहता है। इससे जान पड़ता है कि वह शरीर का कोई भाग नहीं है, किन्तु उससे अलग है। वह निराकार और सनातन है। वह कर्म करने मे स्वतन्त्र है। इसलिये यह बात सिद्ध है कि वह अपने कर्म के लिए उत्तरदायी है।

गधा अपने दातो से घास-पात खाता है, किन्तु अन्न का प्रयोग नही जानता। मगर की रीढ की हड्डी सीधी होती है; परन्तु वह मनुष्य की तरह सीधा नहीं खड़ा हो सकता।

ईश्वर ने जिस प्रकार इन्हे बनाया है उसी प्रकार उसने मनुष्य को भी बनाया है, परन्तु वह सब के पीछे पैदा किया गया है। अन्य प्राणियों पर उसे श्रेष्ठत्व और स्वामित्व दिया गया है, और उसे वेदों का सच्चा ज्ञान भी करा दिया गया है।

इसलिए मनुष्य प्राणी ईश्वर की सृष्टि मे एक अभिमान की वस्तु है। यह बीच में रहकर प्रकृति और पुरुष की एकता का अनुभव करता है। यह ईश्वर का एक अंश है। उसे अपना गौरव ध्यान मे रखकर बुराई की ओर प्रवृत्त नहीं होना चाहिए।

दूसरा प्रकरण

इन्द्रियों का उपयोग

हमारा शरीर और मस्तिष्क अन्य जीवधारियों की अपेक्षा श्रेष्ठ

है—ऐसी अपनी बड़ाई न हाको। घर के दीवालो की अपेक्षा घर का मालिक ही अधिक आदरणीय होता है।

बीज बोने के पहिले ही ज़मीन तैयार कर लेनी चाहिये। घडे बनाने के पहिले ही कुम्हार को अपनी मिट्टी तैयार कर लेनी चाहिये।

जिस प्रकार ईश्वर समुद्र को हुक्म देता है कि तेरी लहरे इस ओर बहे दूसरी ओर नही, वे इतनी ऊँची हों, इससे अधिक नहीं, वे इतना शोर करे इससे अधिक शोर न करे। उसी तरह ऐ मनुष्य ! तू भी अपने आत्मबल द्वारा इस शरीर से उसी प्रकार काम ले जिसमें सब इन्द्रिया तेरे वश मे रहे।

यह शरीर पृथ्वी है; हड्डिया उसको सँभाले रहने वाले खम्भे हैं। जीवात्मा राजा है। इन्द्रिया प्रजा हैं। जिस प्रकार राजा को चाहिये कि वह अपनी प्रजा को राजविद्रोह करने से रोके उसी प्रकार मनुष्य का धर्म है कि वह प्रजा रूपी इन्द्रियो को अपने वश में रक्खे।

जिस प्रकार समुद्र का पानी बादल द्वारा बरसकर नदियों में जाता है। और नदियों से फिर वही पानी लौटकर समुद्र मे आजाता है, उसी प्रकार मनुष्य का चैतन्य उसके हृदय से निकल कर बाहर के अवयवों में जाता है और वहा से घूम घाम कर फिर अपने स्थान मे लौट जाता है। इन दोनों का क्रम बराबर जारी रहता है। और इस प्रकार दोनों परमेश्वर के नियम का पालन करते हैं।

क्या तेरी नाक सुगन्ध लेने का द्वार नहीं है ? क्या तेरा मुँह पेट के भीतर अच्छे २ भोजन के पदार्थ भरने का द्वार नहीं है ? अवश्य है, परन्तु याद रख, बहुत देर के पश्चात् सुगन्ध से मन ऊब उठता है, और भोजन के पदार्थ फीके मालूम होने लगते हैं।

क्या तेरी आखे तेरे शरीर की चौकसी करने वाले पहरुये नहीं हैं ? तथापि कितने बार सत्य असत्य के निर्णय करने मे वे चूक जाती हैं।

इसलिए मन को अपने वश मे रक्खो; अपनी बुद्धि को अपने हित

की ओर लगाने का अभ्यास करो। (नेत्रादि) उसके मन्त्री हमेशा आप से आप सत्य की ओर लगे रहेंगे।

अहा! तेरा हाथ क्या एक अद्भुत वस्तु नहीं है? क्या उसका सा सारी सृष्टि मे कोई है? मालूम है, यह तुझे क्यों दिया गया? वास्तव मे भाई-बन्धुओ की सहायता करने के लिए।

परमेश्वर ने सब जीवधारियों मे तुम्हीं को लज्जायुक्त क्यों बनाया? जब तुम्हें लज्जा मालूम होती है वह उसी समय चेहरे से टपकने लगती है। इसलिये कोई लज्जा-जनक कार्य न करो। भय और उद्वेग करके तुम अपने चेहरे की कान्ति को क्यों नष्ट कर रहे हो? पाप कर्म करना छोड दो, फिर तो तुम स्वय कहोगे कि भय करना मेरी प्रकृति के विरुद्ध और उद्वेग करना नामर्दी है।

निद्रा मे दिखलाई देने वाली आकृतियाँ मनुष्य प्राणियो से ही बोलती हैं, इसलिये उनकी अवहेलना न करो वे ईश्वर-प्रेरित हैं।

ऐ मनुष्य! केवल तुझी को बोलने की शक्ति दी गई है। अपने विशिष्ट अधिकारो के लिए आश्चर्य कर देने वाले की यथोचित प्रशसा कर; और अपने लड़को को विवेकी और ईश्वरभक्तिपरायण बना।

—:०:—

तीसरा प्रकरण

मनुष्य की आत्मा, उसकी उत्पत्ति और धर्म

यदि हम शरीर की ओर देखे तो मालूम होता है कि आरोग्यता, बल और सौन्दर्य ईश्वरीय देन हैं। इन सबों मे आरोग्यता का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। जो सम्बन्ध सत्य और आत्मा का है वही सम्बन्ध आरोग्यता और शरीर का है।

ऐ मनुष्य! इस बात का ज्ञान कि, तेरे आत्मा है, अन्य सब ज्ञानों की अपेक्षा अधिक निश्चित, और सब सत्यो की अपेक्षा अधिक स्पष्ट

है। इसलिये नम्र बनो, परमात्मा को धन्यवाद दो, किन्तु इसको पूर्णरूप से जानने का प्रयत्न न करो, क्योंकि अक्थ्य होने के कारण उसका पूर्ण ज्ञान असम्भव है।

विचारशक्ति, बुद्धि तर्क पद्धति और मनः सकल्प, इनमे से कोई भी आत्मा नहीं है। ये तो उसके काम हैं—मूलतत्व नहीं हैं।

उसकी ही सहायता से उसकी तलाश करो उसके ही गुणों से उसे पहिचानो। सिर के बालों और आकाशस्थ तारों की अपेक्षा उसके गुणों की सख्या अधिक है।

अरब के लोगो की यह धारणा है कि एक आत्मा के खण्ड खण्ड करके सब को बाट दिये गये हैं, और मिश्र देश के लोगों का ख्याल है कि, प्रत्येक मनुष्य की बहुत सी आत्माये हैं। इन दोनों मे से कोई मान्य नहीं है। तुम्हारी धारणा यह होनी चाहिये कि, हृदय की तरह तुम्हारी आत्मा भी एक ही है।

क्या सूरज गीली मिट्टी को कड़ी नहीं करता? क्या वह मोम को पिघलाता नहीं? जिस प्रकार सूरज एक साथ दो काम कर सकता है उसी प्रकार आत्मा भी दो विरुद्ध बाते एक साथ कर सकती है।

जिस प्रकार बादल से घिर जाने पर भी चद्रमा अपना धर्म नहीं छोड़ता, अर्थात् प्रकाश करता रहता है, उसी प्रकार मूर्ख के हृदय में भी आत्मा अपना धर्म नहीं छोड़ती—निर्दोष और पूर्ण रहती है।

वह अमर है, स्थायी है, और सब प्राणियों में एक ही सी है। आरोग्यता से उनकी सुन्दरता बढ जाती है, और सतत अभ्यास से वह उत्साहान्वित होती है।

वह तुम्हारे पीछे भी जीवित रहेगी; परन्तु ऐसा ख्याल न करो कि उसका जन्म तुम्हारे पहिले हुआ था, वह तेरे शरीर के साथ बनाई गई थी। उसकी उत्पत्ति तेरे मास के साथ हुई थी।

हम सर्वगुणसम्पन्न हैं, इसलिए न्याय से; और हम दुर्गुणी हैं; इसलिये दया से वह मिलनेवाली नहीं। न्याय और दया हम पर ही आश्रित हैं; और उनके उत्तरदायी हमी हैं।

मृत्यु किये हुए कुम्मों से बचा लेगी, ऐसा ख़्याल न करो और न यही समझो कि चरित्रभ्रष्ट होने पर हमारी जाच परताल न की जायगी। ईश्वर की सत्ता की मर्यादा नहीं है, उसकी लीला अपरम्पार है, उसको कुछ भी अशक्य नही है।

रात कितनी गई, मुर्गा इस बात को जानता है। बाग देकर कहता है, उठो सवेरा हो गया। कुत्ता अपने मालिक के पैरों की आहट पहिचानता है। पैर मे घाव हो जाने पर बकरा उसे आराम करने वाली वनस्पति की ओर दौड़ जाता है। फिर भी यह सब जब मर जाते हैं तो इसकी आत्मा पचतत्व मे मिल जाती है, केवल मनुष्य की आत्मा जीवित रहती है।

पक्षियों की इन्द्रिया हमारी इन्द्रियो से अधिक तीक्ष्ण हैं, इसलिए उनकी ईर्षा न करो। खूबी किसी वस्तु के रखने मे नहीं किन्तु उसके उचित उपयोग करने मे है।

यदि तेरे कान बारहसिंहे के कान की तरह होते, आखे गिद्ध की तरह तीक्ष्ण होती, घ्राणेन्द्रिय कुत्ते की तरह होती, स्वादेन्द्रिय बन्दर की तरह होती अथवा तेरी कल्पनाये कछुये की सदृश होतीं तो भी क्या, बिना बुद्धि के तुझको इन सब से कोई लाभ हुआ होता? उपर्युक्त सभी प्राणी मरणशील ही हैं फिर भी क्या इनमें से किसी के विचार प्रकट करने की शक्ति है? क्या तुमने उन्हें कभी कहते सुना है कि हमने ऐसा किया।

जिसने हमको आत्मा दिया है उसी की यह प्रतिमा है। उसपर तुम पूर्ण विचार नहीं कर सकते। उसकी स्तुति करना तुम्हारी शक्ति के बाहर है। इसलिए सदा सर्वदा उसके बडप्पन की याद रक्खो। कितना बड़ा बुद्धि-वैभव तुम्हारे सुपुर्द किया गया है, इस बात को न भूलो। जिससे

भलाई होती है उससे बुराई भी होती है, इसलिए उसे सन्मार्ग मे लाने का प्रयत्न करो।

भीड़ मे तुम उसे खो नहीं सकते हो और न हृदय-कपाट मे ही उसे रोक रख सकते हो। लाभ करने ही में उसे आनन्द आता है, और इससे तुम उसे पराङ्मुख नहीं कर सकते।

आत्मा कभी खाली नहीं बैठी रहती। उसके प्रयत्न विश्व-व्यापक हैं उसकी चपलता दबाई नही जा सकती। पृथ्वी के सिरे में कोई वस्तु रख दीजिये, उसको वह प्राप्त कर लेगी। आसमान की चोटी मे कोई वस्तु रख दीजिये, वहा भी उसकी दृष्टि पहुँच जायगी। प्रत्येक नई वस्तु की छान बीन करने ही मे उसे आनन्द मिलता है। जिस प्रकार रेगिस्तान मे मनुष्य पानी की खोज मे भटकता फिरता है, उसी प्रकार इस ससार मे आत्मा ज्ञान की तलाश मे भटकती फिरती है।

आत्मा बड़ी चञ्चल है, इसलिये उसकी चौकसी करो, वह अनियन्त्रित है, इसलिये उसे अपने दाव मे रक्खो, वह उपद्रवी है, इसलिये उसे अपने वश मे किये रहो, वह पानी से भी पतली, मोम से भी कोमल और वायु से भी अधिक चचल है, तब भला बतलाओ तो सही क्या कोई वस्तु उसे बाध सकती है?

पागल मनुष्य के हाथ तलवार की नाई विवेकहीन पुरुष मे आत्मा समझनी चाहिये।

सत्य ही आत्मा का उद्देश है। अनुभव और बुद्धि उस सत्यता को ढूँढने के साधन हैं। ये साधन अनिश्चित और भ्रमजनक हैं? उनके द्वारा वह सत्य किस प्रकार प्राप्त कर सकती है?

बहुमत होना कुछ सत्य का प्रमाण नही है। क्योकि जनता सामान्यत: अज्ञ हुआ करती है।

आत्मा की परीक्षा, अपने उत्पन्नकर्ता का ज्ञान और उसकी आराधना ही वस्तुतः सच्चे ज्ञान मिलने के साधन हैं। इनसे बढ़कर जानने के और क्या साधन हो सकते हैं?

चौथा प्रकरण

मानवी जीवन और उसका उपयोग

जिस प्रकार प्रभात काल लवा पक्षी को, सायकाल की धूसरता उल्लू को, शहद मधुमक्खी को और मृत शरीर गिद्ध को प्रफुल्लित करते हैं उसी प्रकार जीवन मनुष्य के लिये प्यारा है। मानवी जीवन चाहे उज्ज्वल भले ही हो, किन्तु वह आखो को चकाचौंध मे नही डालता, चाहे वह निस्तेज भले ही हो, फिर भी निराशा उत्पन्न नहीं करता, वह चाहे जितना मधुर हो, फिर भी उससे जी नहीं ऊबता। चाहे सडकर वह बिगड़ गया हो फिर भी छोड़ा नहीं जाता। इतना होने पर भी उसका सच्चा मूल्य कौन जान सकता है?

बुद्धिमत्ता इसी मे है, जब जीवन की कदर उतनी ही की जाय जितनी योग्यता है। मूर्खों की तरह न तो यह समझो कि जीवन की अपेक्षा दूसरी कोई वस्तु अधिक मूल्यवान नहीं है, और न ढोंगी बुद्धिमानों की तरह यह ही ख़्याल करो कि जीवन निःसार है। केवल अपने स्वार्थ ही के लिये उस पर आसक्त न होओ, बल्कि उससे होने वाले दूसरों के हित का ध्यान रक्खो।

सोना देने पर भी जीवन नहीं खरीदा जा सकता और न ढेर के ढेर हीरे खर्च करने पर गया हुआ समय फिर वापस मिल सकता हैं। इसलिये प्रत्येक क्षण को सद्गुण सपादन करने मे ही लगाना बुद्धिमानी का काम है।

हमारा जन्म न हुआ होता अथवा जन्मते ही हम मर गये होते तो अच्छा होता—ऐसा न कहो और न अपने उत्पन्नकर्ता से यह पूछो कि "यदि हम पैदा न होते तो तू बुराई किसके लिये बनाता"? ऐसे ऐसे प्रश्न करना भूल का काम है क्योंकि भलाई बुराई तुम्हारे हाथ मे है और भलाई न करने का नाम बुराई है।

यदि मछली को मालूम हो जाय कि चारे के नीचे कँटिया है तो क्या वह उसे निगल जायगी ? यदि सिंह जान ले कि यह जाल मेरे फँसाने के लिये बिछाया गया है तो क्या वह उसमे घुस जायगा ? उसी प्रकार यदि यह बात मनुष्य को विदित हो जाय कि जीवात्मा भी शरीर के साथ नष्ट हो जायगा तो क्या वह कभी जीने की इच्छा करेगा ?

जिस प्रकार पक्षी एकाएक पिंजड़े मे फँस जाने पर पटक पटक कर अपने शरीर की दुर्गति नहीं कर डालता, उसी मे पड़ा पड़ा अपना दिन व्यतीत करता है, उसी प्रकार जिस स्थिति मे हो उससे भागने का प्रयत्न न करो उसी मे सन्तोष रक्खो, समझ लो कि हमारे भाग्य मे यही बदा था।

यद्यपि तुम्हारी स्थिति के मार्ग काटेदार हैं, किन्तु वे दुःखदायी नहीं हैं। उन सबों को अपनी प्रकृति के अनुकूल बनालो। जहा किंचित् भी बुराई देख पडे, समझ लो कि वहा बड़ी सावधानी की आवश्यकता है।

जब तक तुम पुआल के बिछौने पर लेटे हो तब तक तुम्हें बड़ी गहरी नींद आवेगी, किन्तु जहा गुलाब के फूलों का बिछौना सोने को मिला तहा काटों से बचने की चौकसी करनी पडी।

गर्हित जीवन से यशस्वी मृत्यु अच्छी है। इसलिए जितने दिन तुम यश के साथ जीवित रह सकते हो, उतने ही दिन जीवित रहने का प्रयत्न करो। हा, यदि तुम्हारा जीवन लोगों को तुम्हारी मृत्यु से अधिक उपयोगी जान पड़े तो उसकी अधिक रक्षा करना भी तुम्हारा कर्तव्य है।

मूर्ख मनुष्य कहते हैं कि जीवन अल्प है, किन्तु तुम ऐसा न कहो, क्योंकि अल्प जीवन के साथ चिन्तायें भी तो अल्प ही रहती हैं।

जीवन का निरुपयोगी भाग निकाल डाला जाय, तो क्या बचेगा ? बाल्यावस्था, बुढापा, सोने का समय, बेकार बैठे रहने का समय, और बीमारी के दिन शेष यदि जीवन के सम्पूर्ण दिनों मे से निकाल दिये जायँ तो कितने थोड़े दिन शेष रह जाते हैं।

मनुष्य जीवन ईश्वरीय देन है। यदि वह अल्प है तो उससे सुख

भी अधिक होगा। दीर्घ गर्हित जीवन से हमको क्या लाभ ? क्या अधिक दुष्कर्म करने के लिये अपना जीवन बढवाना चाहते हो ? अब रही बात भलाई करने की। तो क्या वह जिसने तुम्हारा जीवन परिमित कर दिया है उतने दिन के कर्मों को देखकर सन्तुष्ट न होगा।

ऐ शोक के पुतले मनुष्य, तू अधिक दिनों तक क्यों जीवित रहना चाहता है ? केवल श्वास लेने के लिये खाने पीने के लिये और संसार का सुख भोगने के लिये ? यह तो पहले ही जाने कितने बार तू कर चुका है। बार बार वही वही करना अरुचिकर और व्यर्थ नहीं है ?

क्या तू अपने गुणों और बुद्धि की वृद्धि करेगा ? परन्तु शोक ! न तो तुझे कुछ सीखना है और न तुझे कोई शिक्षक मिलता है ? तुझे जो अल्प जीवन दिया गया है जब तू उसी का सदुपयोग नहीं करता तो दीर्घ जीवन के लिये फिर क्यों अभिलाषा करता है ?

हम मे विद्या का अभाव है, इसके लिये तू क्यों पश्चात्ताप करता है ? उसका अन्त तो तेरे ही साथ स्मशान मे हो जायगा। इसलिये इस संसार मे ईमानदार बन कर रह, तभी तू चतुर कहलायेगा।

"कौव्वे और हिरनों की अवस्था १०० वर्ष की होती है, और हमारी आयु इतनी दीर्घ क्यों नहीं होती ?" ऐसा ध्यान मे भी न लाओ छिः छिः तुम अपनी समता कौव्वों और हिरनों से करते हो। यदि उनसे तुलना करने बैठो तब भी उनमे विशेष गुण मिलेगे वे तुम्हारी तरह न तो झगडालू हैं और न कृतघ्नी हैं, उलटे वे तुम्हें उपदेश देते हैं कि निष्कपट और सादगी के साथ जीवन व्यतीत करने से बुढ़ापे मे सुख होता है।

क्या तुम अपने जीवन को इन पशु पक्षियों से अधिक उपयोगी बना सकते हो ? यदि नहीं तो अल्प जीवन तो तुम्हें मिलना ही चाहिये।

मनुष्य जानता है कि मैं थोडे दिन तक इस संसार में रहूँगा तब भी अत्याचार करने के लिये संसार को अपना गुलाम बना कर छोड़ता है।

यदि कहीं वह अमर होता तो न मालूम कितना भीषण अत्याचार करता।

ऐ मनुष्य! तुझे जीवन बहुत काफी मिला है। परन्तु तू इसे न जानता हुआ सदैव दीर्घ जीवन के लिये झीकता है। सच तो यह है कि, तुझे दीर्घ जीवन की कुछ भी आवश्यकता नहीं क्योंकि तू उसका दुरुपयोग कर रहा है। तू उसे इस तरह व्यर्थ गवाता है जैसे तुझे आवश्यकता से अधिक जीवन दिया गया हो। और फिर भी शिकायत करता है कि मेरा जीवन दीर्घ नहीं बनाया गया!

मनुष्य, सम्पत्ति का ठीक ठीक उपयोग करने से धनवान् होता है। केवल धन की प्रचुरता से ही वह धनी नहीं कहा जा सकता। विज्ञ जन पहले ही से वह सयमपूर्वक रहते हैं। और आगे भी सयम का ध्यान रखते हैं। परन्तु मूर्खों का हमेशा ही "श्रीगणेशायनमः हुआ करता है।

"चलो प्रथम धनोपार्जन करले और फिर इसका उपयोग कर लेंगे" ऐसा विचार छोड़ दो। वह, जो वर्तमान समय का दुरुपयोग करता है। एक प्रकार से अपना सर्वस्व गवा रहा है। सैनिक के हृदय को बाण सहसा बेध देता है। उसे कुछ खबर नहीं कि यह बाण कहा से आया। उसी प्रकार मृत्यु मनुष्य को एकाएक आ धर दबोचती है जब उसे स्वप्न मे भी यह ख्याल नहीं होता कि मै इस प्रकार काल का ग्रास बन जाऊँगा।

अब बतलाइये जीवन क्या है जिसकी लोगों को इतनी इतनी उत्कट इच्छा रहती है? अथवा श्वासोच्छ्वास क्या वस्तु है जिसका चाव जन साधारण इतना करते हैं? उत्तर यही देना पड़ेगा कि यह जीवन भ्रमोत्पादक और आपत्तिपूर्ण है। इसके आदि मे अज्ञान, मध्य में दुःख और अन्त में शोक होता है।

जिस प्रकार एक लहर दूसरी लहर को धक्का देती है और फिर दोनों पीछे से आई हुई तीसरी लहर में अतर्भूत हो जाती हैं, उसी प्रकार जीवन मे एक सकट के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा और तीसरे के

बाद चौथा ऐसे ही नये नये सकटों का आना जाना लगा रहता है, प्रस्तुत बड़े सकट मे पूर्व के छोटे छोटे सकट विलीन हो जाते हैं। यदि सच पूछिये तो हमारे भय ही हमारे वास्तविक सकट हैं और असभव बातों के पीछे पड कर निराशाओ को मोल लेते हैं।

मूर्ख मृत्यु को डरते हैं, और अमर होने की भी इच्छा करते हैं।

जीवन का कौनसा भाग हम हमेशा अपने साथ रखना चाहते हैं? यदि कहिये जावनी, तो क्या जवानी व्यभिचार, और धृष्टता में व्यतीत करने के लिये माग रहे हो? और यदि कहो बुढ़ापा, तो क्या निर्वीर्य अवस्था ही तुम्हें अधिक पसन्द है?

ऐसा कहा जाता है कि, सफेद बालों का बड़ा सत्कार होता है। यह बात सच है, परन्तु सद्गुण यौवन का भी मान बढा सकता है, बिना सद्गुणो के बुढ़ापे का प्रभाव आत्मा की अपेक्षा शरीर पर ही अधिक पड़ता है।

कहते हैं कि, वृद्ध पुरुषो का आदर इसलिये होता है कि ये विशृ ख-लता का तिरस्कार करते हैं। परन्तु जब हम देखते हैं कि वे व्यसन और विपय का तिरस्कार स्वय नहीं करते, किन्तु व्यसन और विषय उनका ही तिरस्कार करते हैं, तब हमें यही कहना पड़ता है कि लोगों का स्वय का उपर्युक्त कथन कुछ बहुत सत्य नहीं है।

अतएव यौवन काल मे सद्गुणों को उपलब्ध करो तभी बुढ़ापे में भी सत्कार होगा।

दूसरा खण्ड
मानवी दोष और उनके परिणाम

——:०:——

पहला प्रकरण
वृथाभिमान

मनुष्य का मन चंचल है। उच्छृङ्खलता जहा चाहती है उसे खींच ले जाती है। निराशा उसे व्याकुल किये रहती है, और भय कहता है कि, मैं मुझे खा ही डालूँगा। किन्तु इन सब की अपेक्षा मन पर अहकार की ही सत्ता अधिक है। इसलिये मानवी आपत्तियों को देखकर आसू न बहाओ, बल्कि उनकी मूर्खता पर यदि हँसो तो कोई हानि नहीं। अहंकारपूर्ण मनुष्य का जीवन स्वप्न के समान होता है।

मनुष्यों मे सब से अधिक प्रसिद्ध योद्धा भी यदि अहकार रखता है तो उसका अस्तित्व व्यर्थ है। जनता अस्थिर और कृतघ्न है, इसलिये बुद्धिमानों को इसकी विशेष परवाह न करनी चाहिये।

जो मनुष्य अपना वर्तमान काम धधा छोडकर सोचने बैठता है कि भविष्य मे जब हमे बडा पद मिलेगा तो हम क्या २ करेंगे, वह मनुष्य वर्तमान जीविका से भी हाथ धो बैठता है, क्योंकि दूसरे उसकी ताक लगाये रहते हैं, और अत मे फिर उसे धूल ही फाककर रहना पड़ता है। इसलिये अपने वर्तमान पद के काम ठीक ठीक करो। ऐसा करने से भविष्य के उच्च काम भी तुम बडी चौकसी से कर सकोगे।

अहङ्कार मनुष्य को अन्धा बना देता है। इसी के कारण अपने मन के विचार अच्छी तरह उसकी समझ में नहीं आते! अहङ्कार के कारण जब तुम अपने को नही देख सकते तब दूसरे तुम्हें अवश्य ही अच्छी तरह देखते रहते हैं।

टेसू का फूल देखने मे सुन्दर होता है और निरुपयोगी होने पर भी उत्कृष्ट मालूम पडता है, परन्तु महक कुछ भी नही होती। ऐसी ही स्थिति उस मनुष्य की होती है जो दिखलाता तो अपने को बहुत है, परन्तु सद्गुणों से हीन है।

अहकारी का हृदय देखने मे तो शात होता है, किन्तु दुःख के मारे भीतर ही भीतर पकता रहता है। उसकी चिन्तायें उसके सुखों से कहीं ज्यादा हैं।

उसकी व्यग्रता दीर्घ होती है, वह श्मशान मे भी नष्ट नही होती। वह अपनी पहुँच से बाहर अपने विचारों को ले जाता है। वह चाहता है कि मृत्यु के पश्चात् मेरी प्रशसा हो, परन्तु जिन लोगो से इस बात की उसे आशा होती है वे ही उसे धोखा देते हैं।

जिस प्रकार विवाह करके स्त्री से सम्बन्ध न रखना असम्भव है उसी प्रकार मनुष्य के लिये यह आशा करना वृथा है, कि मृत्यु के पश्चात् लोग मेरी प्रशसा करे और उससे मुझे सुख हो।

सारे जीवन अपना कर्तव्य करते रहो। लोग यदि उसके विषय मे कुछ भला बुरा कहे तो उस पर ध्यान न दो। तुम्हारी योग्यता के अनुसार तुम्हारी जो प्रशसा हो उसी मे सतोष रक्खो। उसी के सुनने मे तुम्हारे वंशजो को आनन्द मिलेगा।

तितली को जिस प्रकार अपना रङ्ग नही दिखलाई पड़ता अथवा चमेली की सुवास स्वय चमेली को नहीं मालूम होती, उसी प्रकार डींग हाकने वाले पुरुष को अपने गुण दृष्टिगोचर नही होते। वह चाहता है दूसरे उनको देखा करे।

वह कहता है कि, मेरे इस सोने चादी और उत्तमोत्तम वस्तुओं से क्या लाभ, यदि लोगों को यह न मालूम हो और वे उनकी प्रशसा न करे। किन्तु याद रखना चाहिये कि यदि सचमुच इसकी यह इच्छा है कि लोग उसके विपुल धन को देखे, और उसकी प्रशसा करे तो उसे चाहिये कि भूखो को अन्न और नङ्गों को वस्त्र दे।

निरर्थक शब्दों मे दूसरों की वृथा खुशामद क्यों करते हो ! तुम जानते हो कि जब कोई तुम्हारे सामने "हा जी हा जी" करता है, तब तुम उसकी ओर कितना ध्यान देते हो ! खुशामदी मनुष्य जान बूझ कर तुमसे झूठ बोलता है, और वह भी जानता है कि तुम उसको धन्यवाद दोगे परन्तु तुम सदैव उससे सत्य और सरल भाषण करो, इससे वह भी ऐसा ही करेगा।

वृथाभिमानी पुरुष अपने ही विषय का वार्तालाप करने में प्रसन्न होता है, परन्तु वह नहीं समझता कि, दूसरे उसे सुनना पसन्द नहीं करते।

यदि उसने कोई अच्छा काम किया, अथवा उसके पास कोई उत्तम वस्तु हुई, तो वह बड़ी खुशी के साथ लोगों से कहता फिरता है। वह चाहता है दूसरे उसका गुण गान करें, किन्तु उसकी आशा निराशा के रूप में परिणत हो जाती है। लोग कहते तो हैं कि अमुक मनुष्य ने अमुक काम किया, अमुक मनुष्य में अमुक गुण हैं, परन्तु पीछे से यह भी कहने लगते हैं कि देखो तो वह मनुष्य कितना घमण्डी है।

मनुष्य एक दफे मे कोई काम नहीं कर सकता। जो मनुष्य अपना ध्यान बाहरी सौन्दर्य पर लगाता है आन्तरिक मूल तत्व को खो बैठता है। अप्राप्य प्रलोभनों के पीछे लगा रहता है, और जिससे उसका गौरव होगा जिससे उनको मान मिलेगा उसकी कुछ परवाह नहीं करता।

दूसरा प्रकरण

चंचलता

ऐ मनुष्य ! प्रकृति तुझे सदैव चचल बनाने का प्रयत्न करती है, इसलिये उससे हमेशा सावधान रह।

तू मा के गर्भ से ही चचल और अस्थिर है, पिता की चंचलता भी तुझ में उतर आई है, ऐसी दशा में तू निश्चल और स्थिर किस प्रकार बन सकता है ?

जिसने तेरा शरीर बनाया, उसने तुझे कमज़ोरी भी दी। और जिसने तुझे आत्मा दी उसने तुझे दृढता का हथियार भी दिया। उस हथियार का उपयोग कर। उसका उपयोग करने से बुद्धिमान बनेगा, और बुद्धिमान होने से तू सुखी होगा।

जो मनुष्य कोई एक आध अच्छा काम करता है, उसे बहुत समझ बूझ कर अपनी बडाई मारना चाहिये। क्योंकि वह उस काम को अपनी इच्छा से नहीं कर पाता है। वह काम या तो बाहरी प्रोत्साहन से अथवा घटनाचक्र के फेर-फार मे पड़कर, बिना किसी निश्चय के, आप से आप, हो जाया करता है इसलिये काम का श्रेय घटनाचक्र और प्रोत्साहन को ही मिलना चाहिये।

मनुष्य-स्वभाव की दो कमज़ोरियाँ हैं—चित्त की व्यग्रता और अस्थिरता। इसलिये किसी काम को प्रारम्भ करते समय इन दोनों कमज़ोरियों से होशियार रहो।

चचलता के साथ काम करना एक बहुत ही निन्दनीय बात है। इस चचलता को हम उसी समय वशीभूत कर सकते हैं जब मन की दृढता का अवलम्ब ले।

चचलचित्त मनुष्य जानता है कि मै चचल हूँ, परन्तु वह यह नहीं जानता कि मै ऐसा क्यो हूँ। वह देखता है कि मै भ्रष्ट हो रहा हूँ परन्तु भ्रष्ट होने का कारण उसे नही सूझ पडता। सत्य बातों मे चचलता करना छोड़ दो, लोग तुम्हारा विश्वास करने लगेगे।

काम करने के लिये कुछ नियम बनालो और देखो कि वे ठीक हैं, अथवा नहीं। यदि ठीक जान पड़े तो स्थिर चित्त होकर उन्हीं के अनुसार काम करना प्रारम्भ कर दो। इस प्रकार मनोविकार तुम्हे तङ्ग नहीं करेगे, चित्त की दृढता सद्गुणो को स्थिर करके कठिनाइयों को दूर करेगी। और चिन्ता तथा निराशा को तुम्हारे पास तक आने का साहस नहीं होगा।

किसी मनुष्य की बुराई पर विश्वास न करो जब तक तुम उसे न देखलो। और बुराई यदि सचमुच देखने मे आवे तो उसे भूल जाओ।

जिससे शत्रुता हो चुकी उससे मित्रता नहीं हो सकती, क्योंकि मनुष्य अपने दोष सुधारने का प्रयत्न नहीं करता।

जिसने अपने जीवन के कुछ नियम नहीं बनाये उसके काम ठीक किस प्रकार हो सकते हैं? जो विचार-शक्ति से काम नही लेता उसके काम भी ठीक नहीं उतरते।

चचल पुरुष का चित्त शात नहीं रहता। वह उन लोगों की शाति को भी भङ्ग करता है जिनके साथ वह उठता बैठता है। उसका जीवन वेढगा होता है। उसके काम वेतुके होते हैं। और उसका चित्त हमेशा वायु की तरह रुख बदला करता है।

आज तुम्हे वह प्यार करता है और कल ही घृणा कर सकता है। क्यो? उसे स्वय नहीं मालूम कि मैने पहिले क्यो प्यार किया, और अब क्यों घृणा करता हूँ।

आज तुम्हारे साथ अत्याचार करता है, कल वह तुम्हारे नौकर से भी अधिक नम्र हो सकता है। क्यो? बस इसलिये कि अधिकार के बिना जो आज उद्धतस्वभाव है वह अधीनता के बिना कल दास भी बन सकता है।

आज जो मनुष्य खूब खर्चीला है, कल सभव है वह पेट भर भोजन भी न करे। जो नियमित नहीं है, उसकी यदि ऐसी दशा हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

कोइ नहीं कह सकता कि गिरगिट का रङ्ग काला है, लाल है, अथवा पीला है, बस इसी प्रकार चचल चित्त पुरुषो के चित्त का पता लगाना भी बड़ा कठिन है।

ऐसे मनुष्य का जीवन स्वप्न के सदृश नही तो और क्या है? प्रात: प्रसन्न मुख उठता है, दोपहर में मलिन बदन हो जाता है। अभी ईश्वर

तुल्य बना है, फिर कीड़े मकोड़ों की तरह क्षुद्र बन जाता है। घड़ी हँसता है, घड़ी रोता है। घड़ी काम करने लगता है और घड़ी छोड़ देता है।

ऐसी दशा में सुख-दुःख, यश-अपयश, हर्ष विषाद सब उसके लिये बराबर हैं। इनमें से कोई चिरकाल तक नहीं टिकते।

चंचल मनुष्य का सुख बालू की नींव पर बने हुए राज प्रासाद की नाईं है। चंचलता रूपी वायु के झकोरे से उसकी जड़ हिलने लगती है। फिर वह गिर पड़ता है, और मूढ लोग आश्चर्य करने लगते हैं।

परन्तु दृढ मनुष्य जीवन के नियम बना कर उन्हीं के अनुसार चलता है। किसी आपत्ति के आजाने पर अपने मार्ग से विचलित नहीं होता। उसकी गति गम्भीर, अवक्र और अस्खलित होती है। और उसके अंतःकरण मे शांति का निवास रहता है।

विघ्न आते हैं, परन्तु वह उनकी परवाह नहीं करता। दैविक और मानुषिक शक्तियाँ उसे रोकती हैं, परन्तु वह आगे ही को पैर रखता जाता है।

पहाड़ उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता, और समुद्र उसके चरण-स्पर्श से सूख जाता है। सिंह उसके सामने आकर लेट रहता है, और बन के अन्य पशु उसे देख कर भाग जाते हैं!

वह भय-पूर्ण स्थानो से होकर गुजरता है, और मृत्यु को अपने पास नहीं फटकने देता।

तूफान उसके कधों से टक्कर लगाना चाहता है, किन्तु छूने का साहस नहीं होता। सिर के ऊपर बादल गरज रहा है, परन्तु उसे क्या ! बिजली कड़कती है, परन्तु उसे भयभीत नहीं कर सकती, प्रत्युत उसका तेज बढ़ाती है। ऐसा दृढ़ निश्चयी मनुष्य ससार के दूरस्थ प्रदेशों से भी आकर अपना प्रभाव जमाता है। सुख उसके आगे आगे नाचता चलता है। शान्ति देवी का मन्दिर उसे दूर ही से दृष्टिगोचर होने लगता है। वह दौड़ कर साहस के साथ उसमें प्रवेश करता है, जहाँ सदैव उसका निवास रहता है।

इसलिये ऐ मनुष्य ! अपने दिल को उसी में लगा जो न्याय सगत है, और समझ रख कि, निर्विकारता ही मनुष्य का श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य है।

तीसरा प्रकरण

दुर्बलता

मनुष्य प्राणी वृथाभिमानी और अस्थिर होने के कारण स्वाभाविक ही दुर्बल होता है, क्योकि अस्थिरता और विनाश मे बडा घना सम्बन्ध है। दुर्बलता के बिना वृथाभिमान नही आ सकता। इसलिये यदि तू एक से होने वाले भय को छोड दे, तो दूसरे से होनेवाली हानियो से बच सकता है।

जहाँ तू अपने को वड़ा सामर्थ्यवान समझता है, जहाँ तू अपने को बडा प्रभावशाली दिखलाता है, वहीं तू विशेष कमज़ोर है, यहाँ तक कि जो जो साधन तेरे पास हैं, अथवा जिन जिन अच्छी बातो का तू उपयोग करता है, उनमे भी तू कमजोर है।

क्या तेरी इच्छाये क्षणभगुर नहीं हैं ? क्या तुझे मालूम है कि तू किस बात की इच्छा कर रहा है ? इच्छित वस्तु मिल जाती है, तब भी तुझे सतोष नही होता। इस बात को जब तू चाहे देख ले।

वर्तमान वस्तुओ मे तुझे आनन्द क्यो नही मिलता ? भावी वस्तुएँ तुझे क्यों प्रिय मालूम होती हैं ? इसका कारण यह है कि, वर्तमान वस्तुओं के आनन्द से तू ऊब जाता है, और भावी वस्तुओ की बुराइयों से तू बिलकुल अनभिज्ञ है। इसलिये समझ रख कि सच्चा आनन्द सतोप मे है।

यदि बहुत सी वस्तुएँ परमात्मा स्वयं तेरे सामने रख दे और तुझ से कहे कि जो तेरा जी चाहे, ले ले। तो भी क्या सतोप तेरे साथ

रहेगा ? उस हालत मे भी क्या सुख तेरे सामने हाथ जोडे खड़ा रहेगा ?

अफसोस; तेरी कमज़ोरी विघ्न डालती है और तेरी दुर्बलता बाधक होती है। भिन्न २ वस्तुओं मे तुझे मौज मिलता है, परन्तु जिस वस्तु से चिरस्थायी सुख मिले वही वस्तु चिरस्थायी प्रेम के योग्य है।

सुख जब तक तेरे पास है, तब तक तू उससे घृणा करता है और जब चला जाता है तब उसके लिये पश्चात्ताप करता है। उसके बाद जो दूसरा सुख आता है उसमे भी तो तुझे आनन्द नहीं मिलता। उसके लिये भी तो तू अनखाया करता है। कौन सी बात है जिसमे तू गलती न करता हो ?

वस्तुओं की इच्छा करने और उपलब्ध होने पर उनको उपयोग करने मे मनुष्य की दुर्बलता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। जो वस्तु शुद्ध और मधुर होती है वह हमे कडुई मालूम होती है। हमारे सुख से दुःख और आनन्द से शोक उत्पन्न होता है।

इसलिये अपने सुख स्वाद परिमित रक्खो, तभी वे तुम्हारे साथ रहेगे, और विवेक के साथ हर्ष मनाओ तभी तुम दुःख से बचोगे।

किसी प्रेमिका से प्रेम लगाने मे पहिले आहे भरनी पड़ती हैं और पीछे भी दुःख तथा निराशा होती है। अर्थात् जिस वस्तु के प्राप्त करने के लिये तू मरता है वह तुझे इतनी अधिक मिल जाती है कि उससे जान छुडाना तुझे कठिन हो जाता है।

हमारी प्रशसा मे यदि आदर होगा और प्रीति में यदि मित्रता होगी तो अन्त मे इतना सन्तोष होगा कि उसके सामने बड़ा से बड़ा आनन्द कोई चीज नही। इतनी शाति मिलेगी कि उसके सामने बड़े भारी हर्ष का भी कोई मूल्य न होगा।

ईश्वर ने भलाई दी है तो उसमे उतनी ही मिली हुई बुराई भी

दी है, परन्तु साथ ही साथ बुराई निकाल कर फेंक देने का साधन भी दिया है। जिस प्रकार सुख मे दुःख मिश्रित है उसी प्रकार दुःख भी सुख से खाली नही है। सुख और दुःख एक दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक दूसरे से मिले हुए हैं। उसको सुख ही सुख बनाना अथवा दुःख ही दुःख बनाना हम पर निर्भर है। उदासीनता से कभी कभी आनन्द मिलता है, और हर्ष के अतिरेक में आसू बहने लगते हैं। सब से अच्छी वस्तु भी मूर्ख के हाथ उसके नाश का कारण बन सकती है और बुद्धिमान बुरी से बुरी वस्तु से भी अपने लाभ की बातें ढूढ़ ले सकता है।

मनुष्य प्राणी स्वभाव ही से इतना कमज़ोर है कि केवल अच्छे अथवा केवल बुरे होने की शक्ति उसमें नहीं है। इसलिये उसे चाहिये कि बुराइयों की ओर से मन हटा कर जो कुछ अच्छाई उसके हृदय में वर्तमान है उसी मे सन्तोष करे।

मनुष्य की स्थिति उसकी योग्यता के अनुसार बनाई गई है। इसलिये अप्राप्य वस्तुओं के प्राप्त करने की इच्छा करो, और न इस बात के लिये शोक करो कि सब वस्तुएँ हमे क्यों नहीं मिल जातीं।

क्या तू चाहता है कि हमें धनियों की उदारता और ग़रीबों का सन्तोष एक ही साथ मिल जाय? यह उसी प्रकार असम्भव है जिस प्रकार सौभाग्यवती स्त्री मे विधवा के गुण।

यदि तेरे पिता के प्राण सकट में पड़े हों तो तू क्या न्याय दृष्टि से उनको मरवा डालेगा, अथवा कर्तव्य बुद्धि से उनकी रक्षा करेगा। यदि तेरा भाई सूली पर लटकाया जा रहा हो तो, क्या तू उसे बचावेगा नहीं, और उसकी मृत्यु को अपनी मृत्यु नहीं समझेगा।

सत्य एक ही है। अपनी शकाओं को तूने स्वय उत्पन्न किया है। जिसने तुझे गुण दिये उसने उसके गौरव का ज्ञान भी तुझे दिया। जैसा तेरी आत्मा कहे वैसा कर परिणाम अच्छा होगा।

चौथा प्रकरण

ज्ञान की अपूर्णता

यदि कोई वस्तु सुन्दर है, यदि कोई वस्तु स्पृहणीय है यदि कोई वस्तु मनुष्य के लिये सुलभ है जिससे उनकी प्रशंसा हो तो वह ज्ञान है ऐसा होते हुए भी किसने उसे पूर्ण रूप से उपर्जित किया है।

राजनीतिज्ञ करते हैं कि हम बड़े ज्ञानी हैं, राजा कहता है, वाह हम बड़े ज्ञानी हैं, परन्तु प्रजा दोनो मे से भला किसको समझती है?

मनुष्य के लिये दुराचार की कोई आवश्यकता नहीं है। और न दुर्गुणो को सहन करने की जरूरत है। परन्तु कुछ ध्यान भी है कि नियमों की अवहेलना हमसे कितने पाप कर्म करा डालती है और सामाजिक नियमों के पालन न करने के कारण हमसे कितने पाप हो जाते हैं?

ऐ शासक! ज़रा ख्याल में रक्खे रह कि तेरे द्वारा किया हुआ एक पाप दस आदमियों को दड से वचाने की अपेक्षा भी बुरा हो सकता है।

जब तेरे घराने वालों की सख्या बढ़ जाती है अथवा जब तेरे बहुत से बच्चे हो जाते हैं तो क्या तू उन्हें निरपराधी ग़रीब गुरबों को सताने के लिये नही भेजता और क्या वे लोग उनके हाथ से नहीं मारे जाते जिन्होंने उनका कुछ भी नही बिगाड़ा है?

यदि तेरा मनोरथ हज़ारों मनुष्य के प्राण लेने से प्राप्त होता हो तो ऐसा मत कर। तुझे याद रखना चाहिये कि जिस परमेश्वर ने तुझे बनाया है उसी ने इन्हें भी बनाया है और इनकी जान उतनी ही प्यारी है जितनी की तेरी।

क्या तू यह समझता है कि विना कठोरता किये न्याय नहीं हो सकता? यदि सचमुच येही तेरे विचार हैं तो तू अपनी ही फज़ीहत कर रहा है?

तू जो दम-दिलासा देकर किसी अभियुक्त से पूछता है कि तू ने क्या अपराध किया; और उससे अपना अपराध स्वीकार कराना चाहता है तो क्या ऐसा करके तू स्वयं उसका अपराधी नहीं बनता है ?

जब तू शका मात्र से किसी को दड देना चाहता है तो क्या कभी तू ख़्याल करता है कि सम्भव है अभियुक्त पर झूठा अपराध लगाया गया हो, और बिलकुल बेगुनाह हो ?

इस प्रकार के दंड से क्या तेरी इच्छा की पूर्ति होती है ? अभियुक्त जब अपना अपराध क़बूल कर लेता है तो क्या तेरी आत्मा को सतोष होता है ? जब तू उसे घुड़की देता है तो, सम्भव है, वह डर कर, तुझे प्रसन्न करने के लिये, झूठमूठ अपराध स्वीकार करले जिसको उसने किया नहीं। कैसे अफसोस की बात है कि सच्चा सच्चा हाल नही जानता; और अपराधी को मरवा डालता है।

ऐ सचाई से अनभिज्ञ अल्पज्ञानी मनुष्य ! समझ रख, कि जब तेरा परम पिता तुझसे इसका हिसाब मागेगा तो तू रह रह कर पछतायेगा कि हा मैंने क्या किया; जिन लोगों को मारा वे तो निरपराधी थे।

न्याय के पालन करने मे जब मनुष्य प्राणी असमर्थ है तो उसे सत्य ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ? सत्य के पास तक उसकी पहुँच नहीं हो सकती। जिस प्रकार सूरज की रोशनी से उल्लू की आखे चकाचौध होने लगती हैं उसी प्रकार सत्य की काति से तुम्हारी आखे चकाचौध होने लगेंगी। यदि तू सत्य के पास पहुँचना चाहता है तो पहिले उसके चरणों मे अपना सिर नम्रतापूर्वक झुका। यदि तू सत्य का ज्ञान उपलब्ध करना चाहता है तो पहिले यह समझ कि तुझ मे कितना अज्ञान भरा है।

सत्य का मूल्य मोती से भी अधिक है। इसलिये बड़ी सावधानी के साथ उसकी खोज करो। नीलम, माणिक और हीरे यह सब के पैर की धूल है इसलिये बड़े पुरुषार्थ के साथ तलाश करो।

उद्योग करना ही सत्य की प्राप्ति का मार्ग है। एकाग्रता उसके मदिर का मार्ग दिखलाने वाली दासी है। परन्तु मार्ग मे थक कर बैठ न जाओ। जब तुम उसके पास पहुँच जाओगे तब तुम्हारे सब दुःख सुख रूप में परिवर्तित हो जायँगे।

"सत्य किस काम का! सत्य से दगे-बखेड़े उठ खड़े होते हैं। कपट का व्यवहार बहुत अच्छा है, देखो इससे अनेको मित्र बनते हैं। मै तो इसी का आश्रय लूगा"—ऐसा मुँह से न निकालो, क्योंकि सत्य के द्वारा बने हुए शत्रु चापलूसी (कपट व्यवहार) द्वारा बनाये हुए मित्रों से बढकर हैं।

मनुष्य स्वभाव ही से सत्य की इच्छा करता है; परन्तु जब वह उसके सामने आता है तब उसकी क़द्र नहीं करता। और जब वह ज़बरदस्ती से मनुष्य के पास आता है तब वह क्रोध करने लगता है। इसमें सत्य का कोई दोष नहीं है क्योंकि वह सर्वप्रिय है। परन्तु दोष है मनुष्य की दुर्बलता का। वह उसके तेज को सहन नहीं कर सकता। अब भला तुम्हीं बतलाओ कि मनुष्य प्राणी कितना अपूर्ण है।

यदि तू अपनी अपूर्णता को अधिक जानना चाहता है तो ईश्वरोपासना के समय अपने दिल से पूछ कि धर्म किस लिये बनाया गया। उत्तर मिलेगा कि तेरी कमज़ोरी का स्मरण दिलाने के लिये, और तुझे यह बतलाने के लिये कि भलाई की आशा केवल परमात्मा से करनी चाहिये।

धर्म सिखलाता है कि हम ख़ाक से पैदा हुए हैं और ख़ाक ही में मिल जायँगे। ऐसा होते हुए भी यदि शरीर के लिये, पश्चात्ताप करे तो यह सिवाय हमारी कमज़ोरी के भला और क्या है?

जब दूसरे तुमसे सौगन्ध खिलाते हैं, अथवा तुम स्वय दूसरों को धोखा न देने के लिये सौगन्ध खाते हो, तो क्या तुम नहीं देखते कि तुम्हारे चेहरे पर एक प्रकार की लज्जा छा जाती है। इसलिये न्यायी

बनना सीखो तो पश्चात्ताप न करना पडेगा और ईमानदारी के साथ रहो तो सौगन्ध खाने की आवश्यकता न पड़ेगी।

जो अपने दोप चुपचाप सुन लेता है वह दूसरों को बड़े ज़ोरों के साथ भला बुरा कह सकता है। यदि तुम पर कोई सन्देह करे तो स्पष्ट रूप से उत्तर दो। जो अपराधी नही, उसको भय कैसा ?

जो हृदय का कोमल है, वह प्रार्थना करने पर अपने अङ्गीकृत कार्य से मुँह मोड़ सकता है। परन्तु जो घमण्डी है, वह प्रार्थना से और शेर हो जाता है जब तुझे अपनी अज्ञानता मालूम हो जायगी, तभी तू दूसरों की बातों को ध्यान से सुनेगा भी।

यदि न्यायी बनने की सचमुच तेरी इच्छा है तो मनोविकार छोड़ कर दूसरों की बातों को सुन।

पाँचवाँ प्रकरण

दुःख

भलाई करने मे मनुष्य कमजोर और अपूर्ण है। सुख मे दुर्बल और अस्थिर बनता है; दुःख मे ही केवल दृढ़ और अचल होता है।

दुःख मानवी शरीर का एक धर्म है। यह निसर्ग देव का एक विशेष अधिकार है। वह मनुष्य के हृदय मे वास करता है; और उसके मनोविकार ही से उसकी उत्पत्ति होती है।

जिसने तुझे मनोविकार दिया उसने तुझे उनको वशीभूत करने की शक्ति भी दी, उसका उपयोग करने ही से उन्हे दबा सकेगा।

तेरी उत्पत्ति क्या लज्जास्पद नहीं है तब फिर तेरा विनाश क्या श्रेयस्कर नही ? देखो मनुष्य विनाश करने वाले हथियारों को सोने और रत्नों से अलंकृत करके अपने शरीर पर धारण करते हैं।

जो अनेको बच्चे पैदा करता है लोग उनका नाम धरते हैं, और जो सैकडों की गरदन लडाई मे काटता है लोग उसका सत्कार करते हैं परन्तु

यह सब ढकोसले हैं। रीति, रिवाज, सत्य का स्वभाव नही बदल सकते, और न एक मनुष्य की राय से न्याय का नाश हो सकता है। जिसको यश मिलना चाहिये उसको अपयश और जिसको-अपयश मिलना चाहिये उसे यश मिलता है।

मनुष्य के उत्पन्न होने का तो एक ही मार्ग है, परन्तु उनको नष्ट होने के अनेकों मार्ग हैं। जो दूसरों का जन्म देता है उसकी कोई प्रशसा नहीं करता, और न उसको कोई मान देता है, परन्तु जो दूसरों का खून करता है उसका नाम होता है, और उसे जागीर मिलती है।

तथापि यह समझ रखना चाहिए कि जिसके बहुत से बच्चे हैं, आनन्द उसी को है और जिसने दूसरों की जान ली उसे कुछ भी सुख नही।

मनुष्य को काफी दुःख दिया गया है, परन्तु वह शोक करके उसकी मात्रा और अधिक बढ़ाता है। जितने सकट मनुष्य को मिले हैं उनमे शोक सबसे निकृष्ट है। इसका न मालूम कितना बडा भाग मनुष्य को जन्म ही से दिया गया है। अब उसे अधिक बढाने का प्रयत्न क्यों करना चाहिये।

दुःख करना मनुष्य का स्वभाव है और वह तुझे हमेशा घेरे रहता है। सुख एक बाहिरी मेहमान है, जिसका आगमन कभी २ हुआ करता है। बुद्धि का उचित उपयोग करने से दुःख दूर होगा, और दूरदर्शिता के साथ काम लेने से सुख चिरकाल पर्य्यन्त ठहरेगा।

तेरे शरीर के प्रत्येक अग से दुःख होने की सभावना है, परन्तु आनन्द मिलने के मार्ग बहुत ही थोड़े और सकुचित हैं। आनन्द एक एक करके आते हैं, परन्तु दु.ख एक ही समय मे सैकडो आ सकते हैं।

जिस प्रकार तिनका जलते ही भस्म हो जाता है, उसी प्रकार सुख आते ही एकदम अदृश्य हो जाता है, किसी ने जाना और किसी ने न जाना। दुःख बराबर आता है। दुःख स्वय आता है; परन्तु सुख के लिये कोशिश करनी पडती है।

निरोगी मनुष्यों की ओर लोगों की दृष्टि कम पडती है। परन्तु

किंचित् रोग से भी पिडित रोगी को वे बड़े ध्यान से देखते हैं; इसी प्रकार उच्च से उच्च कोटि के आनन्द का प्रभाव हम पर बहुत कम पड़ता है किन्तु थोड़े से थोडे दुःख का असर आवश्यकता से अधिक होता है।

विचार करना ही मनुष्य मात्र काम है। हम कैसे हैं इस बात का ज्ञान उपलब्ध करना उसका पहला कर्तव्य है। परन्तु सुख में ऐसा कौन ख्याल करता है ? फिर यदि हमें दुःख मिले भी तो आश्चर्य की क्या बात है ?

मनुष्य भावी संकट का विचार करता है। उसके निकल जाने पर उसकी उसे याद रहती है। परन्तु वह नहीं देखता कि, सकट की अपेक्षा केवल उसके विचार ही से अधिक दुःख होता है। यदि वह दुःख उपस्थित होने पर उसे एकदम भूल जावे तो फिर उसे दुःख की सम-वेदना सहन न करनी पडे।

जो बिना कारण रोता है वह बड़ी भूल करता है। वह इसलिये रोता है कि रोना उसे बहुत प्रिय है।

जब तक तीर घुस नहीं जाता तब तक बारहसिघा नहीं रोता, जब तक शिकारी कुत्ते हरिन को चारों ओर से घेर नही लेते तब तक उसकी आखो से एक बूद भी आसू नहीं गिरता। एक मनुष्य ही ऐसा है जो मृत्यु आने के पूर्व ही उसके भयमात्र से घबड़ा कर रोने लगता है।

अपने कृत्यो का हिसाब देने के लिये हमेशा तैयार रहो और समझ रक्खो कि चिन्ता और भय-रहित मृत्यु सब से बढिया मृत्यु है।

छठवां प्रकरण

निर्णय

ईश्वर ने मनुष्य को दो बहुत ही बड़ी शक्तिया दे रखी हैं—(१) विवेक शक्ति और (२) इच्छा शक्ति। वस्तुत, सुखी वह है जो इनका दुरुपयोग नही करता।

जिस प्रकार पर्वत पर का झरना जिन २ वस्तुओं को अपने साथ लेकर चलता है उन उन वस्तुओं को चूर चूर कर डालता है। उसी प्रकार जनापवाद से उस मनुष्य की बुद्धि चूर चूर हो जाती है जो उसकी बुनियाद जाने बिना उस पर सहसा बिश्वास कर बैठता है।

ख़बरदार! ख़बरदार! जिसको तुम सत्य समझते हो, ऐसा न हो कि वह कहीं असत्य निकल जाय; और जिर पर तुम अधिक विश्वास करते हो वह कहीं झूठ न सिद्ध हो। दृढ और स्थिर बनो, करने और न करने का निश्चय तुम स्वय करो, ताकि उसका उत्तरदायित्व केवल तुम्हीं पर रहे।

इर्द गिर्द की परिस्थितियो को जाने बिना केवल कार्य से ही उसका परिणाम न निकाल लो। मनुष्य प्राणी घटना चक्र के बाहर नहीं है।

चूंकि दूसरों के विचार हमारे विचारों से नहीं मिलते, इसलिये उनकी अवहेलना न करो। सम्भव है, हम दोना ग़लती कर रहे हों।

जब तुम किसी मनुष्य की प्रशसा उसकी उपाधियों के कारण कर रहे हो, और उन उपाधियों से वञ्चित दूसरो का तिरस्कार करते हो, उस समय तुम भूल करते हो। नकेल से ही ऊँट की परीक्षा भला कहीं होती है। उसकी परीक्षा के लिये सब अगो को देखना पडेगा।

यह न समझो कि शत्रु के प्राण लेने से बदला मिल जाता है। मारकर तुम तो उसे शान्ति दे रहे हो और बदला लेने के सब अवसरों को अपने ही हाथों खो रहे हो। यदि कोई तुमसे आकर कहे कि तुम्हारी माता व्यभिचारिणी है अथवा तुम्हारी स्त्री किसी दूसरे से प्रेम करती है तो क्या तुम्हें दु:ख न होगा? अवश्य होगा। किन्तु यदि इसके लिये तुम्हारा कोई तिरस्कार करे तो एक प्रकार से वह अपने को तिरस्कृत कर रहा है। भला कहीं एक मनुष्य दूसरों के दुर्गुणों का उत्तरदाता हो सकता है।

न तो अपने हीरे की बेकदरी करो और न दूसरों के हीरे की विशेष प्रशसा करो। समझ रक्खो, वस्तु का मूल्य कुबुद्धियों और बुद्धिमानों के ससर्ग से घटता बढता है।

"हमारी पत्नी तो हमारे आधीन है" यह ख्याल करके उसका मान कम न करो। क्या समझकर उसने तुम्हें पति बनाया? केवल तुम्हारे गुणों को देखकर। इस बड़े उपकार के लिये क्या तुम उसको कम प्यार करोगे?

विवाह करते समय पत्नी के साथ यदि तुम्हारे वादे सच्चे रहे हैं, तो जब तक वह जीवित है तब तक तुम चाहे भले ही मुह फेरे रहो, परन्तु उसकी मृत्यु से तुम्हे दुःख अवश्य होगा।

"उस मनुष्य का विवाह हो गया है, इसलिये उसका जीवन सर्वोत्तम है" ऐसा न सोचो। हा इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उसका जीवन सुखमय ज़रूर है।

"हमारा मित्र आसू बहा रहा है" केवल इतने ही से उसकी हानि की कल्पना न करलो। ऐसी बड़ी २ आसू की बूदों की हानि से कोई सम्बन्ध नहीं है। कभी २ लोग बिना हानि हुए भी, दूसरो की सहानुभूति आकृष्ट करने के लिये झूठ मूठ रोने लगते हैं।

चाहे कोई काम बडे धूम धडक्के और गाजे बाजे के साथ किया गया हो, तो भी उसकी प्रशंसा न करो। महात्मा लोग बड़े २ काम करते हैं, परन्तु इसके लिये ढोल पीटते नही फिरते।

कोई साधारण मनुष्य जब दूसरों की कीर्ति सुनता है तो उसे आश्चर्य्य होने लगता है, परन्तु जिसका हृदय शांतिपूर्ण है उसको उसी से सुख मिलता है।

"दूसरो ने इस उत्तम काम को किसी बुरी इच्छा से किया"—ऐसा न कहो, क्योंकि तुम्हे दूसरो के दिल का हाल क्या मालूम? दुनिया तुम्हे अवश्य थूकेगी और कहेगी कि तुम्हारा हृदय ईर्षा से भरा हुआ है।

दांभिकता मे दुर्गुण की अपेक्षा मूर्खता ही अधिक है, ईमानदार होना उतना ही सुलभ है जितना ईमानदार होने का बहाना करना।

दूसरों के अपकार के बदले उनका उपकार अधिक करो। मानो ऐसा करने से वे तुम्हारे साथ अपकार की अपेक्षा उपकार अधिक करेंगे।

घृणा करने के बदले प्रेम करने की ओर अधिक प्रवृत्त रहो। ऐसा करने से लोग घृणा करने की अपेक्षा अधिक प्रेम करेंगे।

दूसरों की निन्दा करने के बदले उनकी प्रशंसा करो। ऐसा करने से लोग तुम्हारे गुणों की प्रशंसा करेंगे और तुम्हारे दोषों पर ध्यान न देंगे।

जब तुम किसी की भलाई कर रहे हो तो यह ख्याल करके करो कि भलाई करना उत्तम है। यह ख्याल करके न करो कि लोग तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। उसी प्रकार बुराई इसीलिये न छोड़ो कि लोग इसके लिये तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं, बल्कि यह समझ कर उसका परित्याग करो कि बुराई करना बुरा है। ईमानदारी को अच्छा समझ कर अपनाओ; ऐसा करने से तुम ईमानदार सदा बने रहोगे। जो बिना किसी नियम के काम करता है, हमेशा चंचल रहता है।

बुद्धिमानो की *लानतमलामत* अच्छी है; किन्तु मूर्खों की प्रशंसा अच्छी नहीं है। बुद्धिमान तुम्हारे दोष इसलिए बतलाते हैं कि जिसमें उन्हें तुम सुधार लो, परन्तु मूर्ख तुमको अपने ही सदृश समझ कर तुम्हारी प्रशंसा करता है।

जिस पद की योग्यता तुम में न हो उसे स्वीकार न करो अन्यथा, वे लोग, जो उस पद के योग्य हैं, तुम्हारा तिरस्कार करेंगे।

जिस विषय का तुम्हें स्वयं ज्ञान नहीं है, उसका उपदेश दूसरों को न करो, नहीं तो जब यह बात उन्हें मालूम हो जायगी तो वे तुम्हारी निन्दा करने लगेंगे।

जिसने तुम्हें हानि पहुँचाई उससे मित्रता की आशा न रक्खो। जिसको हानि पहुँचाई गई है वह चाहे क्षमा भी कर दे परन्तु जो हानि पहुँचाता है वह कभी क्षमा नहीं कर सकता।

अपने मित्र पर उपकार का बोझा न लादो। समझ रक्खो, यदि उसे मालूम हो गया, तो मित्रता फिर नहीं रहने की। थोड़े उपकार से मैत्री भंग हो जाती है, और बड़े उपकार से शत्रुता उत्पन्न होती है।

जो अपना ऋण नहीं अदा कर सकता वह उसके स्मरण मात्र से झेंप जाता है और दूसरे को हानि पहुंचाता है। वह उस मनुष्य को देखकर लज्जित होता है।

दूसरों की बढ़ती देख कर खेद न करो और न अपने शत्रु की आपत्ति को देखकर खुशी मनाओ। यदि तुम ऐसा करोगे तो दूसरे भी ऐसा ही करने लगे गे।

यदि मनुष्य मात्र का प्रेम सम्पादन करना चाहते हो तो अपनी परोपकार-बुद्धि को सार्वभौमिक बनाओ। यदि इस उपाय से तुम्हें प्रेम प्राप्त न हुआ हो तो फिर वह और किसी उपाय से नहीं मिलने का। फिर भी, चाहे वह तुम्हें प्राप्त न हो, परन्तु तुम्हें इस बात का सन्तोष अवश्य होगा कि तुमने अपने को उसके योग्य बनाया है।

सातवाँ प्रकरण

अहंकार

अहकार और, नीचता एक दूसरे के विपरीत देख पड़ते हैं, परन्तु मनुष्य प्राणी इन विपरीत बातों को भी एक समान बनाता है। वह एक ही समय अत्यन्त दुःखी और अहंकारयुक्त बनता है ?

अहकार बुद्धि के क्षय का कारण है। वह लापरवाही को बढ़ाता है। फिर भी यह न समझना चाहिये कि बुद्धि से उसकी कोई शत्रुता है।

कौन ऐसा है जो अपनी प्रशंसा और दूसरों की निन्दा न करता हो ? जब स्वय ईश्वर तक अपने अहकार से नही बच सकता जो कि हमारा कर्ता है—तब फिर हमी उससे कैसे बचे रह सकते हैं ?

मूढ़ विश्वास कहा से उत्पन्न हुआ ? और खोटी उपासना कहाँ से —ली ? जो बात हमारी पहुँच के बाहर है उस पर वाद विवाद करने से

और जो बात हमारे समझ मे नही आ सकती उसको समझने की चेष्टा करने से इन दोनों की उत्पत्ति हुई।

हमारी बुद्धि परिमित और अल्प है, तब भी उसकी अल्पशक्ति का प्रयोग जैसा हमें करना चाहिये वैसा हम नही करते। हम ईश्वर की महत्ता जानने का प्रयत्न नहीं करते। जब हम उसकी उपासना करने बैठते हैं तो उसकी ओर अपने ध्यान को पूर्ण रूप से नहीं लगाते।

जो मनुष्य अपने राजा के विरुद्ध बोलने मे डरता है वह ईश्वर के कामों मे दोष निकालता फिरता।

जो मनुष्य, बिना आदर सत्कार के, अपने राजा का नाम लेना तक पसन्द नहीं करता वही मनुष्य जब झूठ को सत्य बतलाने के लिये सौगन्ध खाता है तो उसे लज्जा नही आती।

जो मनुष्य न्यायाधीश की आज्ञा को चुपचाप सुन लेता है, वही ईश्वर के साथ बहस करने का दम भरता है। वह हाथ पैर जोड़ कर उसे खुश करता है, उसकी स्तुति करता है, कहता है कि यदि अमुक मेरी इच्छा पूरी हो जाय तो मै १० ब्राह्मणों को भोजन कराऊँगा, यदि उसकी प्रार्थना का कुछ फल न हुआ तो वह उसी ईश्वर को गालिया तक देने लगता है।

ऐ मनुष्य! इतना अधर्म करते हुए भी तुझे दंड क्यों नहीं मिलता? कारण यह है कि समय बदला लेने का नही है। यह समझ ईश्वर की पूजा करना न छोड़ो कि वह हमे दड देता है। ऐसा करने से तुम्हारा ही पागलपन साबित होगा, अपने अधर्म से दुःख तुम्ही को मिलेगा, दूसरे को नही।

तुम कहते तो हो कि मै परमेश्वर का पुत्र हूँ किन्तु उसका उपकार मानना भूल जाते हो और उसकी आराधना नही करते। विश्वास तो ऐसा ऊँचा और कृत्य ऐसा तुच्छ!

सच पूछिये तो मनुष्यप्राणी अनन्त विश्व मे एक ज़र्रे की नाई है;

किन्तु वह समझता है कि पृथ्वी और आकाश मेरे ही लिये बनाये गये हैं। उसका ख्याल है कि सारी प्रकृति मेरी भलाई करने मे आनन्द पाती है।

वृक्षो और नावों की परछाई पानी मे हिलती है, किन्तु मूर्ख समझता है कि, निसर्ग देव मुझे प्रसन्न करने के लिये ऐसा कर रहे हैं। प्रकृति देवी अपना नियमित काम करती है, परन्तु मनुष्य समझता है वह सब मेरी आँखो को आनन्द देने के लिये कर रही है।

वह जब धूप लेने के लिये बैठता है तो समझता है कि सूर्य की किरणे मेरे ही लिए बनाई गई हैं और जब चादनी रात मे बाहर घूमने के लिये निकलता है तो सोचता है कि चन्द्रमा मुझे प्रसन्न करने के लिये बनाया गया है।

ऐ मूर्ख ! इतना घमड क्यो करता है ? याद रख, निसर्ग देव तेरे लिये काम नही कर रहा है। जाड़े और गरमी तेरे लिये नही बनाये गये हैं। मनुष्य सृष्टि की सृष्टि यदि न रहे तो भी उसमे परिवर्तन नहीं होने का। तू तो फिर उन असख्यो मे से एक है।

अपने को ऊँचा न समझो, क्यो कि देवदूत तो तुझ से भी अधिक ऊँचे हैं। अपने दूसरे भाइयो की उपेक्षा इसलिये न करो कि वे तुम से छोटे हैं, क्यो कि उनको भी तो परमेश्वर ने ही तुम्हारी तरह बनाया है।

यदि परमात्मा ने तुम्हें सुखी बनाया है तो पागलपन में आकर दूसरों को दुखी न करो। होशियार रहो कहीं उलट कर फिर तुम्हारे ही पास न चला आवे। क्या वे हमारी ही तरह परमेश्वर की सेवा नहीं करते ? क्या उसने उन सबो के लिये नियम नही बनाये ? क्या उनकी रक्षा का उसे ख्याल नहीं है ? तो उनको दु:खी करने का साहस तुम फिर क्यों कर सकते हो।

अपनी राय और लोगों की राय से निराली न समझो। और जो तुम्हें अच्छा न लगे तो उसको बुरा समझ कर उसका निरादर न करो। दूसरों के विषय मे राय स्थिर करने की शक्ति किसने दी अथवा भला बुरा जानने की समझ तुझे कहा से मिली।

न मालूम कितनी सच्ची बातें झूठी सिद्ध हो गई और न मालूम अभी और दूसरी कितनी बाते आगे चल कर झूठी सिद्ध होंगी। ऐसी दशा में मनुष्य फिर किसी बात का पूरा विश्वास क्यो कर सकता है ?

जो बात तुम्हे भली मालूम होती है उसे करो। आनन्द आप से आप दौडा आवेगा। बुद्धिमान होने की अपेक्षा सद्गुणी होना अच्छा है।

जिस बात को हम नहीं समझते उसमे सत्य और झूठ क्या समान नहीं देख पडते ? तब उनके जानने का अन्य कौन सा मार्ग है।

बहुत सी बाते हमारी बुद्धि के बाहर हैं, और वास्तव में हम उनको समझ नहीं सकते, परन्तु दिखलाने के लिये लोगो से हम यही कहते हैं कि वाह, हम तो इन्हे समझ गए हैं ताकि वे हमारी प्रशसा करे। क्या यह मूर्खता और अहङ्कार नहीं है ?

धृष्टतापूर्वक कौन बोलता है ? अपनी ज़िद पर डटे रहने का प्रयत्न कौन करता है ? वह नहीं जो अज्ञानी है, बल्कि वह जो वृथाभिमानी है।

प्रत्येक पुरुष ने जहा एक बात पकड़ ली तो उसी पर वह दृढ़ रहना चाहता है। परन्तु अभिमानी ही अधिकतर ऐसा किया करते हैं। भीतर से उसका विश्वास तो उसमे नहीं है, किन्तु दूसरों को उस पर विश्वास कराने का आग्रह करता है।

ऐसा न समझो कि प्राचीनता अथवा बहुमत से कोई बात सत्य हो सकती है। यदि विवेक धोखा न दे तो हमारी बात उतनी ही आदरणीय हो सकती है, जितनी दूसरों की।

तीसरा खण्ड

स्वपर विघातक मानवी धर्म

—:o:—

पहला प्रकरण

लोभ

धन अधिक ध्यान देने योग्य वस्तु नहीं, इसलिये उसके उपार्जन करने के लिये एक दम तन्मय हो जाना उचित नहीं।

किसी वस्तु को अच्छी समझ कर यदि मनुष्य उसके पाने की इच्छा करता है तो वह इच्छा और उससे उपलब्ध आनन्द केवल कल्पनामात्र होते हैं। इसलिये गॅवार लोगों का मत स्वीकार न करो, वस्तु के मूल्य की परीक्षा स्वय करो, इस प्रकार मनुष्य सहसा लोभी नहीं हो सकता।

धन का अपरिमित लोभ आत्मा के लिये विष का काम करता है ? वह प्रत्येक सद्धर्म का नाश करता है। उसका आविर्भाव होते ही सारे गुण, ईमानदारी और स्वाभाविक मनोधर्म दूर हो जाते हैं।

लोभी मनुष्य पैसे के लिये अपने बच्चो तक को बेच देता है। उसके माता पिता चाहे मर जाय परन्तु वह पैसा नहीं खर्च करता। वह धन के सामने स्वाभिमान तक खोने के लिये तैयार रहता है। ढूंढता है वह सुख और मिलता है उसे दुःख।

वह मनुष्य, जो धन के पीछे मन की शाति से हाथ धो बैठता है, इस उद्देश्य से भविष्य मे उसके उपभोग करने मे मुझे बड़ा आनन्द मिलेगा, उस मनुष्य के समान हैं जो घर सजाने का सामान खरीदने के लिये अपने घर ही को बेच डालता है।

लोभी मनुष्य की आत्मा कृपण होती है। जो यह समझता है कि केवल धन ही सुख का साधन नहीं है, उसके अन्य दूसरे सुख के साधन

नष्ट होने से बचे रहते हैं। जो दरिद्रता को स्वाभाविक आपत्ति न समझ कर उससे भयभीत नही होता वह उससे ध्यान हटाकर अपने को और आपत्तियो से बचाये रहता है।

अरे मूर्ख! धन की अपेक्षा सद्‌गुण क्या अधिक मूल्यवान नहीं होता? दरिद्रता से पाप क्या अधम नही है? संतोष करना और लोभ बढाना मनुष्य के हाथ मे है। जो प्राणी सतोपी है वह उन पुरुषों के दुःखों को देखकर हँसता है जो तृष्णावश अधिक धन सचय करने की चिन्ता मे घूमा करते हैं।

यह समझ कर कि सोना देखने योग्य वस्तु नही, निसर्ग देव ने उसे पृथ्वी के अन्दर छिपा दिया है, और इसी विचार से चादी को भी उसने तुम्हारे पैरो के नीचे गाड़ रक्खा है। क्या इससे उसका यह उद्देश्य नहीं है कि सोना और चादी आदर और ध्यान देने योग्य वस्तु नहीं हैं?

लोभ ने लाखों अभागे मनुष्यो को आज तक मिट्टी में मिला दिया है। लोभी उन सेवको की तरह है जो दिलजान से एक निर्दयी मालिक की सेवा करते हैं, और बदले मे पुरस्कार की जगह दुःख पाते हैं।

(जहा धन गड़ा रहता है वहा की ज़मीन बजर होती है। जहा सोना छिपा पड़ा रहता है वहा घास तक नहीं उगती।)

ऐसी ज़मीन मे पशुओं के लिये चारा नहीं मिलता, इर्दगिर्द धान्य सम्पन्न खेत नहीं दिखलाई पड़ते, फल फूल नही उत्पन्न होते, इसी प्रकार जिसका ध्यान उठते बैठते, सोते जागते धन मे रहता है उसके हृदय मे किसी सद्‌गुण की वृद्धि नहीं होने पाती।

धन बुद्धिमानो का दास है परन्तु वही धन मूर्खों के हृदय मे अत्याचारियो का काम करता है। लोभी धन की चाकरी करता है, धन उसकी चाकरी नही करता। जिस प्रकार रोगी रोग के वश मे रहता है। उसी प्रकार लोभी धन के वश मे रहता है। वह उसकी तृष्णा बढ़ाकर उसे दुःख देता है, और मरते दम तक उसका पिंड नही छोड़ता।

क्या सुवर्ण ने अब तक लाखों के प्राण नष्ट नहीं किये ? क्या उसने अभी तक किसी का भला किया है ? तो फिर क्यों इच्छा करते हो कि मेरे पास यदि विपुल धन हो जाय तो मेरा नाम हो ?

क्या वे ही लोग बुद्धिमान नहीं हुए जिनके पास धन की मात्रा कम रही है ? क्या उन्हीं का ज्ञान सच्चा सुख नही है ? क्या निकृष्ट मनुष्यों ही के यहा धन की अधिकता नहीं पडती। और साथ ही क्या उनका अन्तिम काल दुःखमय नहीं होता।

दरिद्री को अनेक वस्तुओ की लालसा रहती है, परन्तु लोभी को धन छोड़कर और किसी वस्तु की चाहना नहीं रहती।

लोभी से किसी का भला नहीं हो सकता। वह दूसरों के साथ इतना निर्दयी नहीं होता जितना अपने साथ।

परिश्रम के साथ द्रव्योपार्जन करो और उदारता के साथ उसे व्यय करो। दूसरों को सुखी करके जितना सुख मनुष्य को होता है उतना सुख उसे और कहीं नहीं मिलता।

दूसरा प्रकरण

अतिव्यय

धन सचय करने से बढ़कर यदि कोई दूसरा और अधिक निकृष्ट व्यसन है तो निरर्थक बातों में उसका व्यय करना है।

निसर्गदेव ने चीज़ो के व्यय करने का अधिकार सब को समान दिया है। जो आवश्यकता से अधिक व्यय करता है वह एक प्रकार से अपने ग़रीब भाइयों के अधिकारों पर हस्तक्षेप कर रहा है।

जो अपना धन नष्ट करता है वह दूसरों के उपकार करने के साधन कम कर रहा है। वह धर्म करना नहीं चाहता और न उससे होने वाले का अनुभव करना चाहता है।

धन के अभाव से मनुष्य को इतना दुःख नहीं मिलता जितना दुःख धन की विपुलता से होता है। दरिद्र होने पर मनुष्य जितना आत्मसंयम कर सकता है उतना धनवान होने पर नहीं कर सकता।

दरिद्र होने पर केवल एक गुण को आवश्यकता है, और वह है सहिष्णुता, परन्तु धनियो को दान, धर्म, परमितता, परोपकार, दरदूर्शिता आदि अनेक गुणों की आवश्यकता है। यदि ये गुण उनमे न होंतो वे दोषी ठहराये जाते हैं। ग़रीबो को केवल अपनी ही आवश्यकताओं की चिन्ता करनी पड़ती है, किन्तु धनियो को दूसरो का भी ख़्याल करना पड़ता है।

जो अपने द्रव्य को बुद्धिमत्ता से खर्च करता है वह अपने दुःख दरिद्र भी दूर कर रहा है; और जो उसका सचय करता है वह अपने लिये दुःख जमा कर रहा है।

अतिथि को यदि किसी बात की आवश्यकता पडे तो उससे मुह न फेरो जिस बात की आवश्यकता तुम्हें है यदि उसी बात की आवश्यकता तुम्हारे भाई को पड जाय तो भी उसे देने मे आगा पीछा मत करो। स्मरण रहे, अपने पास की वस्तु देकर उससे रहित रहने मे जितना आनन्द है उतना आनन्द उन लाखों रुपयों के रहने मे नहीं है जिनका उचित उपयोग तुम्हें नहीं मालूम।

तीसरा प्रकरण

बदला

आत्मिक निर्बलता के कारण बदला लेने की इच्छा उत्पन्न होती है। जो अत्यन्त नीच और डरपोक हैं उन्हीं की प्रवृत्ति इस ओर अधिक रहती है।

जिनसे घृणा होती है। उनको कौन सताता है? डरपोक। जिनको लूटती हैं उन्ही को मारती कौन हैं? स्त्रियाँ।

हानि पहुँचाने के विचार आते ही बदला लेने की इच्छा उत्पन्न होती है। सज्जनों के हृदय मे दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के विचार कभी नहीं आते और इसी कारण वे बदला लेने का ख्याल तक नही करते।

जब की स्वय दुःख ही ध्यान देने की बात नही है, तब फिर दुःख देने वाले की उपेक्षा क्यों न करनी चाहिये ? ऐसा न करना मानो अपने को मनुष्यत्व से गिराना है।

जो तुम्हे पीड़ा पहुँचाना चाहता है उससे अलग रहो। जो तुम्हारी शाति को भग करना चाहता है उसका साथ छोड़ दो। इससे केवल यही नही होगा कि तुम्हारी शाति ज्यो की त्यों बनी रहेगी, बल्कि बिना किसी निन्दनीय साधन का अवलम्ब लिये तुम्हारे प्रतिद्वन्दी को आप से आप बदला मिल जायगा।

जिस प्रकार तूफान और बिजली का प्रभाव सूर्य्य और तारों पर नही पड़ता, बल्कि वे स्वय पत्थरों और वृक्षों पर टकरा कर शात होते हैं, उसी प्रकार हानि का प्रभाव महात्माओं के हृदय पर नही पड़ता, उलटकर वह उन्ही लोगों पर पडता है जो हानि पहुँचाना चाहते हैं।

बदला लेने की इच्छा वे ही करते हैं जिनकी आत्मा क्षुद्र है और जिनकी आत्मा महान है वे उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं और बुराई करने वाले की भलाई करते हैं।

तुम बदला लेने की इच्छा क्यो करते हो ? किस उद्देश से बदला लेने का ख्याल तुम्हारे मस्तिष्क मे नाचता रहता है ? इससे क्या तुम अपने शत्रु को दुःख देना चाहते हो ? परन्तु स्मरण रक्खो, शत्रु को दुःख पहुँचाने की अपेक्षा इससे पहिले तुम्हारे ही दिल को दुःख पहुँचेगा।

जिनके हृदय मे बदला लेने की इच्छा उत्पन्न होती है उसके दिल को वह इच्छा पहिले पीड़ित कर डालती है, और जिससे बदला लिया जाता है उसका दिल शात रहता है।

बदला लेने की इच्छा से हृदय रोगी हो जाता है इसलिये बदला लेना उचित नहीं। सृष्टि देवी ने उसे मनुष्य प्राणी के लिए नही

बनाया है। जिसको स्वय बहुत दु.ख है उसे और अधिक दुःख की क्या आवश्यकता ? अथवा दूसरे ने यदि दुःख का भार किसी मनुष्य के ऊपर लाद दिया है तो उसमे और हम अधिकता क्यों करें।

बदला लेने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को, पहले की पीड़ा से सतोष नहीं होता, और इसीलिए मानों वह उस दण्ड का भी अपने को भागी बना लेता है जो वस्तु. दूसरे को मिलना चाहिए। यही नहीं, किन्तु वह पुरुष, जिनसे बदला लेना चाहता है, मौज करता है, और एक और नवीन दु.ख को देखकर हॅसता है।

बदला लेने का विचार बड़ा क्लेशकारक होता है, और जब उसे कार्य में परिणत करते हैं तब वह बड़ा भयकर हो जाता है। कुल्हाडी फेकने वाला जहाँ उसे फेकना चाहता है, वहाँ प्राय: वह नहीं गिरती। यह भी सभव है कि चिटक कर वह उसी का प्राणान्त कर दे।

इसी प्रकार शत्रु से बदला लेने मे प्राय: बदला लेने वाले के ही प्राण संकट मे पड़ जाते हैं, वह अपने प्रतिद्वन्द्वी की एक आँख फोड़ते समय अपनी दोनों आँखे फोड़ डालता है। यदि उसका मनोरथ निष्फल हुआ तो उसके लिये शोक करता है, और यदि फलीभूत हुआ तो उसके लिये पश्चात्ताप भी करता है।

शत्रु की मृत्यु से क्या तुम्हारा द्वेष शान्त हो जायगा ? क्या उसे मार डालने से तुम्हें शाति मिलेगी ? क्या तुम दु.ख देने के लिये उसे पराजित करके छोड देना चाहते हो ? ऐसा करने से मृत्यु के समय क्या वह तुम्हारी श्रेष्ठता मानेगा और तुम्हारे क्रोध का क्या उसे अनुभव होगा।

निस्सन्देह बदला लेने मे बदला लेने वाले की विजय होनी चाहिये और जिसने उसे हानि पहुँचाई उसे दिखला देना चाहिये कि देखो मुझे क्रोधित करने का यह फल होता है। उसे अपने किये का फल भोगना चाहिये, और उसके लिये पश्चात्ताप करना चाहिये। तथापि इस प्रकार का बदला भी क्रोध से ही उत्पन्न होता है और इसमें कोई गौरव

नहीं। गौरव तो इसमे है कि उसको हानि भी न पहुँचे और तुम्हारा काम भी हो जाय।

कायरता ही हम से हत्या कराती है। जो हत्या करता है वह डरता रहता है कि यदि शत्रु जीवित रहा तो वह कहीं बदला न ले। मृत्यु झगड़ों का अन्त कर देती है, इसमे कोई शङ्का नहीं, परन्तु इसमे कोई कीर्ति भी नहीं। हत्या करना शूरता नहीं है। यह तो सिर्फ अपना बचाव करना है।

किसी अपराध के लिये बदला लेने से बढ कर कोई सुगम वस्तु नहीं, परन्तु साथ ही उसे क्षमा करने से बढ़कर कोई दूसरा उत्तम काम नहीं।

अपने मन को जीतने से बढ़कर कोई दूसरी जीत नहीं है। अपराध की अवहेलना करना ही अपराध का बदला लेना है।

जब तुम बदला लेने का विचार करते हो तो तुम स्वीकार करते हो कि हमारी हानि हुई; जब तुम शिकायत करते हो तब तुम कबूल करते हो कि शत्रु ने हमे हानि पहुँचाई, ऐसा करके क्या तुम अपने शत्रु के बल की प्रशसा करना चाहते हो ?

जो मालूम न पड़े वह हानि कैसी ? जिसे हानि की कल्पना की नहीं उसको बदला कैसा ? हानि के सह लेने में अपमान न समझो। इससे बढकर शत्रु पर विजय प्राप्त करने का कोई दूसरा साधन नहीं है।

उपकार कर देने से अपकार करने वाले को लज्जा मालूम होती है। तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से डरकर वह हानि पहुँचाने का विचार भी न करेगा।

जितने अधिक अपराध हों उतनी अधिक क्षमा प्रदान करना अत्युत्तम है। और जितना न्याय बदला लेने मे है उसके बढ़कर न्याय और गौरव उसको भूल जाने मे है। क्या तुमको स्वय अपने विषय में न्यायधीश होने का अधिकार है ? क्या तुम स्वय एक फरीक होते हुए निर्णय

सुना सकते हो ? हमारा काम उचित है, अथवा अनुचित है, ऐसा स्वयं निर्णय करने के पहिले देखो तो सही कि दूसरे तुम्हारे निर्णय को न्याय-संगत बताते हैं कि नहीं।

प्रतिकारपरायण पुरुष भयभीत होता है, इसलिये ये लोग उसका तिरस्कार करते हैं। परन्तु जिसके हृदय में क्षमा और दया है उसकी पूजा होती है। उसके कृत्यों की प्रशसा हमेशा के लिये रह जाती है, और सारा जगत, प्रेम के साथ उसका नाम लेता है।

चौथा प्रकरण

क्रूरता, द्वेष और मत्सर

बदला लेना बुरा है, किन्तु क्रूरता उससे भी अधिक बुरी है। क्रूरता मे बदले की सब बुराइया मौजूद हैं, विशेषता यह है कि उसे उत्तेजित करने के लिये किसी कारण की आवश्यकता नहीं पडती।

क्रूरता मनुष्य का स्वाभाविक धर्म नहीं है, इसलिये लोग उसका परित्याग करते हैं। उससे उनको लज्जा आती है, और इसलिये वे उसे निशाचरी प्रकृति कहते हैं। यदि ऐसी बात है तो वह फिर उत्पन्न कहा से हुई ? सुनिये। इसके पिता का नाम श्रीमान् भय और माता का नाम श्रीमती निराशा देवी है ? इन्हीं के ससर्ग से वह जन्मी है।

वीर पुरुष सामना करनेवाले शत्रु पर तलवार उठाता है परन्तु उसके शरण आते ही वह हथियार रख देता है। शरण में आये हुए को मारने से कोई बहादुरी नहीं है। उसका अपमान करने में कोई यश नहीं, वह तो स्वय मर रहा है। मारो उद्धत स्वभाव वाले को और बचाओ नम्र पुरुषों को इसी में तुम्हारी विजय और कीर्ति है।

इस ध्येय की पूर्ति करने के लिये जिसके पास सद्गुण नहीं हैं, इस ऊँचे पद पर चढ़ने के लिये जिसके पास साहस नहीं वही हत्या कर के विजय, और रुधिर बहा कर राज्य प्राप्त करता है। जो सब से डरता

है वह सबको मारता भी है। अत्याचारी अत्याचार क्यों करते हैं? क्योंकि उन्हें भय लगा रहता है। जब तक कोई जीव जीवित है तब तक कुत्ता उससे आंख नहीं मिला सकता, जब वह मर जाता है तब वही कुत्ता उसका मृत शरीर खाता है। परन्तु शिकारी कुत्ता, जब तक वह जीवित है तभी तक उस पर वार करता है और जब वह मर जाता है तो कुछ नहीं बोलता।

देश के भीतर ही होने वाली लडाइयो मे बडा रक्तपात होता है, क्योंकि लड़ने वाले लोग बड़े डरपोक होते हैं गुप्त षड्यंत्र रचने वाले हत्यारे होते हैं, क्योंकि मृत्यु के समय सब मौन रहते हैं। हमारा कृत्य कहीं खुल न जाय इस बात के लिये क्या वे डरते नही रहते?

यदि तुम क्रूर नहीं होना चाहते तो मत्सरता से दूर रहो और यदि तुम चाहते हो कि हम निशाचरो की गणना से बचे रहें तो ईर्षा न करो।

प्रत्येक मनुष्य को हम दो दृष्टियों से देख सकते हैं। एक से तो वह हमे बहुत दुखदाई प्रतीत हो सकता है, और दूसरी से नहीं, यथाशक्ति उसी दृष्टि से उसे देखो जिससे वह तुम्हे दुखदाई मालूम न हो। यदि वह सुखदाई मालूम होगा तो तुम भी उसे दु.ख न पहुँचाओगे।

ऐसी कौन सी बात है जिसको मनुष्य कल्याणकारी न बना सकता हो? जिससे हमको अधिक क्रोध आता है उससे घृणा की अपेक्षा शिकायत करने का भाग अधिक रहता है। जिसकी शिकायत हम करते हैं उससे हमसे मेल हो सकता है, परन्तु जो हमारा तिरस्कार करता है उसको मारने के अतिरिक्त हमारा समाधान और किसी प्रकार नही होता।

यदि तुम्हारे लाभ होने मे कोई विघ्न डाल दे तो क्रोध से भभक न उठो। ऐसा करने से तुम्हारी बुद्धि नष्ट होगी, जिसकी हानि उस लाभ से कहीं अधिक है। यदि तुम्हारा दुपट्टा कोई चुराले जाय तो क्या तुम अग भी फार डालोगे?

जब तुम दूसरे की पदवियों को देखकर ईर्षा करते हो, जब दूसरों के गौरव को देखकर तुम्हारे हृदय मे शूल होने लगता है, उस समय यह सोचो कि उन्हें ये सब कैसे मिले। यह जब मालूम हो जायगा तब तुम्हारी ईर्पा दया रूप मे परिवर्तित हो जायगी।

कोई वैभव यदि उसी मूल्य पर तुम्हें दी जाय, तो तुम यदि बुद्धिमान हो, तो उसे ज़रूर अस्वीकार कर दोगे। पदवियो का मोल क्या है? चापलूसी। ऐसी दशा मे पदवी देनेवाले का दास बने बिना मनुष्य वैभव (पदवी) किस प्रकार प्राप्त कर सकता है?

दूसरों की स्वतन्त्रता अपहरण करने के लिये क्या तुम अपनी स्वतन्त्रता खो दोगे? अथवा किसी ने यदि ऐसा किया हो तो क्या तुम उसकी ईर्पा करोगे?

जिसको तुम स्वीकार नहीं करना चाहते उसकी ईर्पा नहीं करते। तब फिर जिस कारण से डाह उत्पन्न होता हो उसी की ईर्पा क्यों करते हो।

यदि तुम्हे सद्गुणो की क़ीमत मालूम होती तो क्या तुम उनके लिये शोच न करते जिन्होने इतनी नीचता से सद्गुण नष्ट करके प्रतिष्ठा ख़रीदी है।

जब बिना दु:ख किये दूसरों की भलाई सुनने का अभ्यास तुम्हें पड जायगा तो उनके सुख को सुन कर तुम्हे सच्चा आनन्द प्राप्त होगा। जब तुम देखोगे कि उत्तम उत्तम वस्तुएँ योग्य पात्रो को मिली हैं तो तुम्हें सतोप होगा, क्योंकि गुणियों के उत्कर्ष को देखकर गुणियों को सुख होता है।

(जो दूसरों के सुख को देखकर सुखी होता है वह अपने सुख की वृद्धि करता है।)

———

पाँचवाँ प्रकरण

हृदय का क्षोभ (उदासीनता)

आनदी जीव के देखकर दुखी के होठों में मुस्कराहट आ सकती है। परन्तु उदासीन की उदासीनता के देखकर आनन्दी मनुष्य का भी आनन्द लोप हो जाता है।

उदासीनता का कारण क्या है? आत्मिक निर्बलता। उसकी वृद्धि क्यों कर होती है? निरुत्साह के कारण। उसका सामना करने के लिये तैयार रहो, वह हानि पहुँचाये विना आप से आप भाग जायगी।

वह तुम्हारी जाति भर की बैरिणी है। इसलिये उसे अपने हृदय से निकाल दो। वह तुम्हारे जीवन के सुखों के विष देकर मार डालने वाली है, इसलिए उसे अपने घर में न घुसने दो।

एक तिनके की भी हानि हो जाने पर उदासीन मनुष्य के मालूम होता है कि हमारी सारी सपत्ति नष्ट हो गई। उदासीनता तुम्हारी आत्मा को थोडी थोडी बातों पर अशान्त करती है और महत्वपूर्ण बातों पर उसे प्रवृत्ति नहीं होने देती।

वह तुम्हारे गुणों के ऊपर आलस का परदा डाल देती है। वह उन गुणो के छिपा देती है। जिनसे दूसरे तुम्हारा सत्कार कर सकते हैं। यह उन्हे दबा देती है उस समय तुम्हारा काम है कि उन्हे फिर विकसित करो।

वह अरिष्टो के तुम्हारे लिये आमन्त्रित करती है। वह तुम्हारे हाथो को बाध देती है। यदि तुम चाहते हो कि कायरता हम में न रहे, यदि तुम चाहते हो कि कमीनापन हम में से निकल जाय, यदि तुम्हारी इच्छा है कि अन्याय को हमारे हृदय में स्थान न मिले, तो उदासीनता के वशीभूत न होओ।

स्मरण रहे कि कहीं बुद्धिमता के वेष मे वह तुम्हे धोखा न दे दे। धर्म तुम्हारे उत्पन्नकर्ता की स्तुति करता है इसलिये उसे उदासीनता की छाया

से न ढक जाने दो। उत्साह के साथ रहने से ही तुम प्रसन्न चित्त रह सकते हो। इसलिये उदासीन रहना छोड दो।

मनुष्य को दुःखी क्यों होना चाहिये ? उसे आनन्द मनाना क्यों छोड़ देना चाहिये जब उसके सब कारण उसमें विद्यमान हैं ? दुःखी होना क्या दुःख को और मोल लेना नहीं है ?

भाड़े पर बोलाये हुए मातम करने वाले जिस प्रकार दुःखी देख पड़ते हैं अथवा पैसा मिलने के कारण वे जिस प्रकार आसू बहाने लगते हैं उसी प्रकार बहुत से मनुष्य भी उदासीनता के कारण आँसू बहाने लगते हैं यद्यपि इस उदासीनता का कोई कारण नहीं होता।

किसी वस्तु से कोई दुःखी हो सो बात नही। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि जिससे एक मनुष्य दुःखी होता है उसी से दूसरे सुखी होते हैं।

किसी मनुष्य के पूछो तो सही कि क्यों भाई शोक करने से क्या तुम्हारी दशा कुछ सुधर जाती है वह स्वय कहेगा कि नहीं, शोक करना सचमुच मूर्खता है। वे उस पुरुष की प्रशसा करेंगे जो अपने संकटों को वीरता और साहसपूर्वक सह लेते हैं परन्तु अपनी बार बावले बन जाते हैं। कैसे शोक की बात है। ऐसे मनुष्यों को चाहिये कि जिनकी वे प्रशसा करते हैं उनका अनुकरण करे।

शोक करना निसर्ग देव के विरुद्ध है। क्योंकि इससे नैसर्गिक कामों मे बाधा पड़ती है। जिसको निसर्ग देव रोचक बनाते हैं। उसको शोक देवी नीरस बना देनी है।

जिस प्रकार प्रचण्ड तूफान के सामने वृक्ष गिर पड़ता है और फिर उठने का साहस नहीं करता उसी प्रकार निर्बल आत्मा वाले मनुष्य का हृदय बोझ से झुक जाता है फिर नही उठता।

जिस प्रकार पहाड़ पर से नीचे आने वाला पानी बरफ को भी बहाकर नीचे ले आता है उसी प्रकार गालों पर की सुन्दरता आँसुओं से धुल

जाती है। न तो पहाड पर की बरफ लौटकर फिर से आ सकती है और न गालों पर की वह सुन्दरता ही अपने स्थान को लौट सकती है।

जिस प्रकार तेजाब मे मोती डालने से पहिले वह धूमिल हो जाती है और फिर गल जाती है उसी प्रकार हृदय की उदासीनता प्रथम मनुष्य पर अपना काम करती है और फिर उसे हड़प कर जाती है।

सड़को पर विश्राम लेने वाले स्थान पर भी उदासीनता दिखलाई पड़ेगी। ऐसा कौन सा स्थान है जहाँ उसका निवास न हो किंतु उससे बचकर निकल भागने का प्रयत्न करना चाहिये, यह तो मनुष्य के हाथ मे है। देखो तो किस प्रकार उदासीन मनुष्य उस फूल की तरह सर नीचे किये रहता है जिसकी जड़ काट दी गई है। वह किस प्रकार अपनी आँखे ज़मीन की ओर गाड़े रहता है। परन्तु ऐसी अवस्था से सिवाय रोने के और क्या लाभ।

उदासीन मनुष्य का मुँह क्या कभी खुलता है? क्या उसके हृदय मे समाज के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है? क्या उसकी विचार शक्ति अपना अपना काम करती है? उससे इन सबका कारण पूछो तो कहेगा कुछ नहीं। भाई यह उदासीनता कैसे आई, कहेगा, ऐसे ही, कोई कारण नहीं है।

धीरे धीरे उसकी शक्ति का ह्रास होता जाता है और अन्त मे वह कराल काल का ग्रास बन जाता है। और फिर कोई पूँछता भी नहीं कि अमुक मनुष्य का क्या हुआ।

तेरे बुद्धि है और तू देखता नहीं। तुम मे ईश्वर की भक्ति है और तू अपनी भूल नहीं समझता।

ईश्वर ने बड़ी दया के साथ मनुष्य को पैदा किया है। यदि उसे तुझे सुखी रखने की इच्छा न होती तो वह उत्पन्न ही काहे को करता! तुम उसके नियमों का उल्लघन करने का प्रयत्न क्यों करते हो।

जब तक तुम निर्दोषी होकर अत्यन्त सुखी हो तब तक तुम ईश्वर का बड़ा मान कर रहे हो। और जब तुम असन्तुष्ट हो तब तुम उसकी

अवहेलना करते हो। क्या उसने सब वस्तुओ को परिवर्तनशील नहीं बनाया है? फिर जब उनमें परिवर्तन होता है तो क्यों शोक करते हो?

यदि हमें निसर्ग देव के नियम मालूम हैं तो हम शिकायत क्यों करते हैं? यदि नहीं मालूम तो सिवाय अपने अन्वेषन के दोष और दें किसे?

ससार के नियम तुम नहीं बना सकते। जिस रूप मे तुम नियमों को देखते हो उसी रूप मे उनका पालन करना तुम्हारा पहला काम है। यदि वे दुःख देते हैं तो दु.खी होकर तुम स्वय अपने दुःख को अधिक बढा रहे हो।

बाहरी लुभाव मे न फसो और न यह ख्याल करो कि शोक से दुर्भाग्य का घाव भर जाता है। शोक दवा की जगह विष का काम करता है। कहता तो है कि मै तेरे छाती से तीर निकाल रहा हूं, किन्तु उल्टे वह उसे घुसेडता जाता है।

उदासीनता के कारण तुम मे और तुम्हारे मित्र मे अनबन हो जाती है। इसी के कारण तुम खुल कर बातचीत नहीं कर सकते। कोने में छिपे पड़े रहते हो, लोगो के सामने निकलने मे झेपते हो। दुर्भाग्य के आघात सहन कर लेना तुम्हारा स्वाभाविक धर्म नहीं और तुम्हारी बुद्धि तुम से कहती है कि तुम ऐसा करो किन्तु वीरता के साथ आपत्ति का सामना करना तुम्हारा मुख्य स्वाभाविक धर्म है। और साथ ही साथ इस बात का अनुभव करना भी तुम्हारा कर्तव्य है कि वीरता हम में वर्तमान है।

सभव है कि आसू आखो से गिर पड़े, परन्तु सद्गुण नष्ट न होने पावे। आसू बहाने का कारण मिल सकता है, परन्तु साथ ही यह भी स्मरण रहे कि अधिक आसू न बहने पावे।

आसुओं के प्रवाह से दुःख की मात्रा नही ज्ञात हो सकती। जिस प्रकार हद दरजे का आनन्द कोई नहीं जान सकता, उसी प्रकार हद दरजे का शोक भी किसी को नहीं मालूम हो सकता है।

आत्मा को दुर्बल कौन करता है ? उसका उत्साह कौन अपहरण करता है, महात्कार्य्यों मे विघ्न कौन डालता है । और सद्गुणों को नष्ट कौन करता है ? शोक, और कोई नहीं ।

इसलिये जिस शोक से कोई लाभ होने की संभावना नहीं उसमें क्यों पड़ते हो ? और जिसका मूल ही अनिष्टकर है उसमे उत्तम उत्तम साधनो का बलिदान क्यों करते हो ?

चौथा खण्ड

मनुष्य को अपनी जाति वालों से मिलनेवाले लाभ

——:o:——

पहला प्रकरण

कुलीनता और प्रतिष्ठा

कुलीनता आत्मा को छोड़ कर अन्यत्र वास नहीं करती; और सद्-गुणों के अतिरिक्त कहीं प्रतिष्ठा नहीं मिलती। पाप कर्म (कुटिल नीति) द्वारा हम राजाओ के कृपापात्र बन सकते हैं, द्रव्य खर्च करके बड़े २ पद हम उपलब्ध कर सकते हैं, परन्तु इन साधनो के द्वारा प्राप्त की हुई प्रतिष्ठा सच्ची प्रतिष्ठा नहीं है। पाप कर्म द्वारा न तो मनुष्य कुछ तेजस्वी बन सकता है, और न द्रव्य द्वारा कुलीन बन सकता है।

जब मनुष्य को उसके सद्गुणों के कारण पद मिलते हैं, जब देश-सेवा सच्ची करने से सर्वत्र उसका मान होता है, तभी देने वाले और पाने वाले दोनों की प्रतिष्ठा होती है और ससार का लाभ होता है।

अब बतलाओ तो सही कि तुम प्रतिष्ठा किस प्रकार सपादन करना चाहते हो, धूर्तता से अथवा सद्गुणों से ?

जब किसी पराक्रमी पुरुष के गुण उसके बाल बच्चों मे उतरते हैं, तभी उसके पद उनको शोभा देते हैं। परन्तु जब पद विभूपित मनुष्य योग्य किन्तु पद रहित मनुष्य से बिलकुल भिन्न होता है तो क्या जनता पदविभूषित मनुष्य को मान दृष्टि से देखती है ?

पैतृक प्रतिष्ठा सर्व श्रेष्ठ मानी जाती है, किन्तु लोग प्रशसा उसी की करते हैं जिसने उसे पहिले उपार्जित किया था। जिस पुरुष में स्वय तो कोई गुण नहीं है, किन्तु अपने पूर्वजो के उत्तम कर्मो के बहाने प्रतिष्ठा चाहता है, वह उस चोर के सदृश्य है जो चोरी करके देवालय

मे आश्रय लेने का प्रयत्न करता है ताकि उसके दुर्गुण सब छिप जायं।

यदि अन्धे के माता पिता आँखों से देख सकते थे तो अन्धे को क्या लाभ ? यदि गूँगे के पूर्वज स्पष्टया बातचीत कर सकते थे तो गूँगे को क्या फायदा ? उसी प्रकार यदि नीच मनुष्य के बाप दादे कुलीन रहे हों तो इससे नीच मनुष्य की कौन सी प्रतिष्ठा ?

सच्ची प्रतिष्ठा उसी की होगी जिसका मन सद्गुणों की ओर प्रवृत है चाहे वह पदवियों से विभूषित न हो, किन्तु लोग उसका सत्कार अवश्य करेंगे।

ऐसा ही पुरुष तो वास्तविक प्रतिष्ठा उपार्जित करेगा और दूसरे तो उससे पावेंगे। ऐसे ही नर-रत्नों में तुम प्रतिष्ठित होने का दम भर सकते हो।

जिस प्रकार परछाईं वस्तु के पीछे २ चलती है उसी तरह सच्ची प्रतिष्ठा सद्गुणों का अनुसरण करती है।

यह न ख्याल करो कि साहस के काम करने अथवा जीवन को धोखे में डालने से प्रतिष्ठा मिलती है। प्रतिष्ठा कुछ काम से नहीं मिलती। प्रतिष्ठा मिलती है कार्य्य करने की विधि से।

राष्ट्र रूपी जहाज सँभालने का भार सब पर ही नहीं रहता अथवा सेनाओं का आधिपत्य प्रत्येक को नहीं मिलता। इसलिए जो काम तुम्हें सौंपा जाय उसे जी जान से करो। लोग तुम्हारी प्रशंसा सहज ही में करने लगेंगे।

"कीर्ति मिलने के लिये विघ्नों पर जय प्राप्त करना पड़ेगा और बड़े बड़े कष्टों का सामना पड़ेगा"—ऐसा न कहो। जो स्त्री सती है उसकी कीर्ति क्या आप से आप नहीं होती ? जो मनुष्य ईमानदार हैं उसका सर्वत्र क्या मान नहीं होता।

कीर्ति की लालसा प्रबल होती है; प्रतिष्ठा की इच्छा बलवती होती है। जिसने इन्हें दिया उसका उद्देश्य इनके देने का महान था। जिस समय समाज के हित के लिए साहसपूर्ण काम करने की आवश्यकता है,

जब स्वदेश के लिये प्राणों को सकट मे डालना पड़ता है; उस समय महत्वाकाक्षा के अतिरिक्त सद्गुणों को और कौन उत्तेजित करता है।

महात्माओं को कोरी पदवियों से प्रसन्नता नहीं होती। उन्हे प्रसन्नता होती है इस टोह से कि हम इन पदवियों के योग्य हैं, अथवा नहीं।

"इस मनुष्य की मूर्ति किसने बनाई" ऐसा करने की अपेक्षा क्या यह कहना उत्तम नहीं है "कि अमुक मनुष्य की मूर्ति क्यों नहीं बनाई गई?"

महत्वाकाक्षी भीड भडक्के मे प्रथम रहेगा। आगे को ठेलता चलेगा, पीछे को देखेगा भी नहीं। सहस्रों मनुष्यों पर विजय प्राप्त करने से उसे इतना सुख न होगा जितना खेद उसे अपने से एक भी अधिक योग्य पुरुष को देखकर होगा।

महत्वाकाक्षा का बीज प्रत्येक मनुष्य में होता है, परन्तु सब मे इसका विकाश नहीं होता। किसी जगह पर तो उसे भय दबा देता है और अनेक स्थानो मे उसे विनय से दबना पड़ता है। महत्वाकाक्षा आत्मा का आन्तरिक वस्त्र है। जड़ देह से सम्बन्ध होने के साथ ही उसका आविर्भाव होता है और उससे सम्बन्ध टूटने के पहले उसका विनाश होता है। यदि तुम महत्वाकाक्षा का उचित उपयोग करोगे तो तुम्हारा सत्कार किया जायगा; और यदि उसका दुरुपयोग करोगे तो तुम्हारी अपकीर्ति होगी, और तुम्हारा नाश हो जायगा।

विश्वासघातकों के हृदय मे महत्वाकाक्षा छिपी रहती है; दाम्भिकता उसकी ओट में रहती है और मायावीपन चटक मटक बातो से उसका मान बढ़ाता है, किन्तु अन्त मे लोग उसकी असलियत समझ जाते हैं।

जो वास्तव मे सद्गुणी है वह सद्गुण को सद्गुण समझ कर उस पर प्रेम करता है। और उस महत्वाकाक्षा से घृणा करता है जिससे प्रशसा मिले। यदि दूसरो की प्रशसा से सद्गुणी मनुष्य सुखी होता

तो उसकी स्थिति कितनी शोचनीय हुई होती। परन्तु ऐसा न हो। वह फल की इच्छा नहीं करता और जितनी योग्यता उसमे है उससे बढ़कर पुरस्कार नहीं चाहता।

सूर्य्य ज्यों २ ऊपर चढ़ता है साया त्यों त्यों कम होती जाती है, उसी प्रकार जितनी अधिक मात्रा सद्गुण की मनुष्य में होती है उतनी ही कम भूख उसे प्रशंसा की रहती है। तथापि उसकी योग्यता के अनुसार जितना मान उसे मिलना चाहिये, उतना अवश्य मिलता है।

कीर्ति परछाईं की तरह अपने पीछा करने वाले से दूर भागती है परन्तु जो उसकी ओर से मुह फेर लेता है उसके पीछे पीछे लगी रहती है यदि विना सद्गुण के कीर्ति पाने की इच्छा करोगे तो न मिलेगी. परन्तु यदि उसमें सद्गुण विद्यमान है तो चाहे तुम एक कोने में छिपे रहो तब भी वहा वह तुम्हारा साथ नहीं छोड़ेगी।

इसलिये जिससे कीर्ति हो उसी को पकड़ो और जो उचित और न्याय पूर्ण है उसी को करो। इस प्रकार अंतःकरण की संतुष्टि से जो हर्ष प्राप्त होगा वह उस हर्ष से कहीं बढकर होगा जो तुम्हारी वास्तविक योग्यता को न जानेवाले लाखों मनुष्य की झूठी प्रशंसा सुनने से हो सकता है।

दूसरा प्रकरण

ज्ञान और विज्ञान

अपने उत्पन्नकर्त्ता की सब वस्तुओं का अध्ययन करना ही मनुष्य का मुख्य कर्तव्य है। जिसे प्रकृति की प्रत्येक बात में आनन्द मिलता है उसे परमात्मा के अस्तित्व में शङ्का नहीं होती। वह उन्हीं वस्तुओं में गदगद होता हुआ उसकी आराधना करता है।

सदैव उसका मन ईश्वर की ओर लगा रहता है, और उसका जीवन भक्ति-पूर्ण होता है। जब वह आंख उठा कर ऊपर की ओर देखता है

तो उसे क्या आकाश चमत्कारों से 'भरा हुआ नहीं दिखलाई पड़ता ! और जब वह पृथ्वी की ओर देखता है तो छोटे छोटे कीड़े मकोड़े उससे दया सकेत करते हुए नहीं देख पड़ते कि परमात्मा को छोड़ कर हमें और कौन बना सकता है।

सब ग्रह अपने अपने मार्ग मे घूमते हैं। सूर्य्य अपनी जगह पर स्थिर रहता है। पुच्छल तारा वायु मण्डल मे घूम कर अपने स्थान पर फिर से आ जाता है। ऐ मनुष्य, ईश्वर को छोड़ कर इन्हें और कौन बना सकता है ? सिवाय उस सर्वन्यायी परमात्मा के उनको नियम के बन्धन से और कौन जकड़ सकता है ?

अहा ! ये कितने चमकीले हैं और इनकी चमक न्यून नहीं होती। वे कितनी तेज़ी से घूमते हैं, किन्तु एक दूसरे से टकराते नही।

पृथ्वी की ओर देखो और उसके उद्‌भिज पदार्थो पर विचार करो। उसके उदर का निरीक्षण करो और देखो कि उसमे क्या है। इन सब से क्या ईश्वर की सत्ता प्रगट नहीं होती ?

घास कौन उत्पन्न करता है ? उसे समय समय पर कौन सींचता है। बैल उसे खाते हैं। घोड़े और गाये उससे पेट भरती हैं। भेड और बकरियों को घास पात कौन देता है ?

बोये हुए अन्न की वृद्धि कौन करता है ? एक मुट्ठी अन्न से सौ मुट्ठी अन्न कौन पैदा करता है। अंगूर जैतूनादि आदि फलों को प्रत्येक ऋतु मे कौन पकाता है ?

क्षुद्र मक्खी क्या आप से आप उत्पन्न हुई ? क्या तू अपने को परमात्मा समझता है ? यदि समझता है तो तू भी उसी की तरह मक्खियाँ उत्पन्न कर।

पशु समझते हैं, हम जीवित हैं, परन्तु इस पर वे आश्चर्य नहीं करते। उन्हे जीवित रहने मे आनन्द मिलता है। परन्तु वे ख्याल नहीं करते कि इस जीवन का कभी अन्त होगा। प्रत्येक प्राणी अपना २ काम

परंपरा से करते हैं और हज़ारों पीढ़िया गुज़र जाती हैं किन्तु जाति लुप्त नहीं होतीं।

परमात्मा की सत्ता, जो छोटी २ बातों में दिखलाई पडती है, वही बड़ी २ बातों में भी देखने मे आती है। तेरा कर्तव्य है कि तू अपनी आखों को उसके जानने में लगा और मस्तिष्क को उसके चमत्कार की परीक्षा में ख़र्च कर।

प्रत्येक वस्तु की बनावट में परमात्मा का सामर्थ्य और उसकी दया देखने में आती है। प्रत्येक वस्तु की बनावट मे उसकी नीति और सुजनता भी समान होती है।

ससार के प्रत्येक प्राणी को सुख मिलने के भिन्न २ साधन हैं। वे एक दूसरे की ईर्षा नहीं करते।

अब भला तुम्हीं बतलाओ कि भाषा के शब्दों मे ज्ञान है, अथवा परमात्मा निर्मित वस्तुओं के निरीक्षण मे। उत्तर यही देना होगा की प्रकृति सौन्दर्य के निरीक्षण में जितना ज्ञान है उतना दूसरी वस्तुओं में नहीं है।

जब तुमने घर बना लिया तो उसका उपयोग करना सीखो। पृथ्वी माता जितने पदार्थ उत्पन्न करती है, वे सब तेरे भले के लिये हैं। अन्न तेरे खाने के लिये और जड़ी बूटिया तेरे रोगों को दूर करने के लिये उत्पन्न की गई हैं।

अब बताओ कि चतुर कौन है? वह जो परमात्मा का सृष्टि का ज्ञान रखता है। और बुद्धिमान कौन है? जो उस पर विचार करता है। जिस शास्त्र की उपयोगिता बढी चढी है, जिस ज्ञान मे अभिमान उत्पन्न होने की शङ्का नहीं है तुम्हारा कर्तव्य है कि स्वयं उसे पहिले सपादित करो। और फिर अपने पड़ोसियों को सिखलाओ, ताकि उनका भला हो।

जीना और मरना, हुकूमत करना और आज्ञा पालना, काम करना और उसका फल भोगना, इत्यादि बातों के विषय मे भी तुम्हारा ध्यान

आकर्षित होना चाहिये। नीति यह सब तुम्हें सिखा देगी, "जीवन की उपयोगिता" इन बातों में तुम्हारी सहायता करेगी।

स्मरण रक्खो, ये सब तुम्हारे हृदय पटल पर लिखे हुए हैं। आवश्यकता केवल इतनी ही है कि तुम्हें उनकी याद भर पड़ जाय। याद आना भी कोई कठिन नहीं है। मन को एकाग्र करो, बस तुम उन्हें स्मरण मे ला सकोगे।

अन्य सर्व शास्त्र व्यर्थ हैं, अन्य सारा ज्ञान कपोल कल्पित है। मानवी जीवन मे उनकी कोई आवश्यकता नहीं। उनसे मनुष्य कुछ अधिक नेक और ईमानदार नहीं हो सकता।

ईश्वर की भक्ति और सजातीय प्राणियों के प्रेम ये ही क्या तुम्हारे मुख्य कर्तव्य नहीं हैं ? बिना ईश्वर की सृष्टि का निरीक्षण किये उस पर तुम्हारी भक्ति किस प्रकार हो सकती है ? और पराधीनता के ज्ञान बिना सजातीय लोगा के साथ प्रेम कैसे हो सकेगा।

पांचवां खण्ड
स्वाभाविक योगायोग
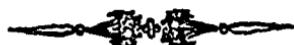
पहला प्रकरण
संपत्काल और विपत्काल

उत्कर्ष होने पर मर्यादा से अधिक हर्ष में न आओ और विपत्का आने पर अपनी आत्मा को शोक के गढे में न ढकेलो। संपत्काल व सुख चिरस्थायी नहीं है, इसलिये उस पर भरोसा न करो। औ विपत्काल की दृष्टि हमेशा वक्र नहीं रहती इसलिये घबड़ाना छोड़क धैर्य के साथ आशा को स्थिर रखो।

विपत्ति काल मे धैर्य रखना जितना कठिन है, सपत्काल मे संय बनना उतनी ही बुद्धिमानी है। संपत्काल और विपत्काल तुम्हा आत्मिक दृढ़ता परखने की कसौटिया हैं। इनको छोड़ कर और कि प्रकार तुम्हारे आत्मा की परीक्षा नही हो सकती है। इसलिये ज इनका आगमन हो तब बड़ी सावधानी से काम लो।

संपत्काल को तो ज़रा देखो। कैसे मज़े में चाटुकारी करके तुम्हें अपने पजे में ले आता है, और किस प्रकार धीरे धीरे तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे उत्साह का अपहरण करता है।

माना कि तुम सकट मे दृढ़ रहे हो; माना कि विपत्ति में तु अचल रहे हो। तब भी अपनी शक्ति को इस ख्याल से कि तुम्हे अ इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी, घटने न दो।

हमारी आपत्ति को देख कर हमारे शत्रुओं का भी दिल पसीज उठता है, और हमारी सफलता और सुख को देख कर हमारे मित्र भी हम से ईर्षा कर सकते हैं!

सत्कृत्यों की जड़ आपत्ति ही है। आपत्ति शौर्य्य और धैर्य्य की धात्री है। जिसके पास माल भरा है क्या वह और अधिक पाने के लिये अपनी जान को खतरे मे डालेगा ?

सच्चा सद्गुणी मनुष्य परिस्थिति के अनुसार काम करता है। परन्तु जब तक इसके ऊपर आपत्ति न आवे तब तक उसका यह गुण सर्व-साधारण को मालूम नहीं होता।

आपत्काल मे मनुष्य को ज्ञात होता है कि हमारे मित्र पैसे के साथी थे। उन्होंने अब मुझे छोड़ दिया है। आपत्काल मे वह समझता है, मेरी सब आशाएँ केवल मुझी पर आश्रित हैं। उसी समय वह वीरता के साथ कठिनाइयों का सामना करता है, और वे उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं।

सपत्काल में वह समझता है कि मै सुरक्षित हूँ, और मेरे मित्र मुझे प्यार कर रहे हैं। सपत्काल मे वह बेपरवाह हो जाता है। संपत्काल मे वह आगामी आपत्ति को नहीं देखता। और सपत्काल ही में वह दूसरों पर पूर्ण भरोसा करता है, और अन्त मे उन्हीं से धोखा खाता है।

आपत्काल मे मनुष्य भला बुरा सोच सकता है परन्तु सपत्काल मे उसकी बुद्धि नही काम करती। इसलिए आपत्काल अच्छा है, जो मनुष्य को सन्तोष का पाठ पढा सकता है, परन्तु सपत्काल अच्छा नही है जिसके वशीभूत होकर मनुष्य आपत्काल आने पर एक दम घबडा जाता है, और फिर उसी में उसकी मृत्यु हो जाती है।

किसी बात का अतिरेक होने पर हमारे मनोविकार हम पर हुकूमत करने लगते हैं। सम्भव बुद्धिमत्ता का चिह्न है।

सारे जीवन सादगी के साथ रहो, हरएक दशा मे सतोप रक्खो। इससे प्रत्येक समय प्रत्येक बात से तुम्हारा लाभ होगा, और लोग तुम्हारी प्रशसा करेगे।

बुद्धिमान प्रत्येक वस्तु से अपना लाभ ढूंढ निकालता है। और भाग्य के सब परिवर्तनों को एक दृष्टि से देखता है; सुखदु:ख पर समान अधिकार रखता है, और कभी अपने नियम से विचलित नहीं होता।

न तो सम्पत्काल मे शेखी मारो, और न आपत्काल में निराश होओ। संकट को न तो बुलाओ और न उसके आने पर मुँह छिपाते फिरो। जो तुम्हारे साथ हमेशा रहने ही वाला नहीं है उससे डरते क्यों हो?

आपत्ति में फँस कर आशा को न छोड़ो; और उत्कर्ष होने पर बुद्धिमत्ता की तिलाजली न दो। जिसके फल के प्राप्त होने मे शङ्का होगी उसकी सिद्धि नहीं हो सकती। और जो सामने के गड्ढों को नहीं देखेगा उसका विनाश अवश्य होगा।

जो कहता है कि समृद्धि ही मे मेरा कल्याण है, उसी में मुझे सच्चा सुख मिल सकता है, वह एक प्रकार से अपने जहाज़ को, बालू की सतह पर लङ्गड़ डाल कर, खड़ा कर रहा है जिसको ज्वरभाटा बहा ले जाता है।

जिस प्रकार पर्वत से निकल कर समुद्र मे जाकर मिलने वाला जल प्रवाह नदी रूप में, मार्ग से खेतों मे होकर जाता है, कहीं ठहरता नहीं, उसी प्रकार भावी प्रत्येक के पास दौरा करती है; किन्तु ठहरती नही, क्योंकि उसकी गति अविरत और हवा की तरह चचल है। इसलिये तुम उसे पकड़ नहीं सकते। जब तुम्हारे ऊपर उसकी कृपा दृष्टि होती है तब तुम्हे सुख होता है; परन्तु जब तुम उसका स्वागत करना चाहते हो तब वह दूसरों के पास निकल भागतो है।

दूसरा प्रकरण

क्लेश और व्याधि

शरीर की व्याधि का प्रभाव आत्मा पर भी पड़ा करता है। एक को आरोग्यता मिले बिना दूसरे को आरोग्यता नहीं मिल सकती।

व्याधियों में क्लेश का नम्बर सबसे बढा चढ़ा है। निसर्गदेव ने इसको दूर करने की कोई औषधि नहीं तैयार की।

जब तुम्हारा धीरज छूटने लगे तो आशा से काम लो और जब तुम्हारी दृढ़ता जवाब देने लगे तो बुद्धि से काम लो।

दुःख भोगना मनुष्य का स्वभाविक धर्म है। क्या तू चाहता है कि कोई ईश्वरीय शक्ति तुझे आकर बचा ले ? अरे भाई तू बड़ा मूर्ख है जब देखता है कि सभी दुःख भोगता है तो तू अपने लिये क्यों घबड़ाता है ?

जो दुःख तेरे भाग्य मे लिख दिया गया है उससे छूटने का प्रयत्न करना अन्याय है। जो तेरे भाग्य मे आजावे उसको चुपके से अगीकार कर ले।

"ऐ ऋतुओ, तुम न बदलो, नहीं तो मेरी आयु कम हो जायगी" ऐसा कहने से क्या वे मान जायगे ? जिसका कोई प्रतीकार न हो सकता उसको सह लेना ही अच्छा है।

चिरकाल तक ठहरने वाला क्लेश तीव्र नहीं होता। इसलिये उसके बारे मे शिकायत करते समय तुम्हे लज्जा आनी चाहिये। जो तीव्र है वह अन्तकाल तक ठहरता है, इसलिये उसे अन्त तक सह लेना चाहिये।

शरीर इस कारण बनाया गया था कि वह आत्मा के अधीन रहे। शरीर के सुख के लिये जीवात्मा को दुःख देना जीवात्मा की अपेक्षा शरीर की अधिक कदर करना है।

काटों से कपड़े फट जाने पर जिस प्रकार बुद्धिमानों को खेद नहीं होता है। उसी प्रकार शरीर को कष्ट होने से धीर पुरुष अपनी आत्मा दुःखी नहीं होने देते।

तीसरा प्रकरण

मृत्यु

जिस प्रकार सोना तैयार करने से कीमियागर की परीक्षा होती है; उसी प्रकार मृत्यु से जीवन और उसके कर्मों की परीक्षा होती है।

यदि जीवन की परीक्षा करनी है तो अन्तिम काल से करो। इसी से तुम्हें मालूम हो जायगा कि तुम्हारा जीवन किस प्रकार का है। जहा कपट का व्यवहार नहीं है वहीं सत्य प्रकाशमान होता है।

जो यह जानता है की, मरना किस प्रकार चाहिये, उसने अपने जीवन का अपव्यय नहीं किया उसी प्रकार जो अपना अतिमकाल कीर्तिप्रद बना रहा है, उसका जीवन व्यर्थ नहीं बीता।

जिसको जिस प्रकार मरना चाहिये यदि वह उसी प्रकार मरा तो उसका जन्म लेना निरर्थक नही हुआ। अथवा जिसने हसते हसते अपने प्राण विसर्जन किये उसका भी जीवन व्यर्थ नही गया।

जो जानता है, हम मरेंगे अवश्य उसे सारे जीवन सुख मिलता है, परन्तु जो इससे अनभिज्ञ है उसे सुख नही मिलता और यदि कुछ मिलता भी है, तो हीरे की तरह शीघ्र ही खो जाने का भय उसमें लगा रहता है।

क्या तुम्हारी इच्छा मर्दानगी के साथ मरने की है? यदि है तो पहिले अपने दुर्गुण का गला घोट डालो। सुखी है वह जो मरने के पूर्व अपने जीवन का कार्य समाप्त कर देता है, जो मृत्यु के समय केवल मरना ही अपना कर्तव्य समझता है और जो कहता है, बस, 'मै जीवन के सब काम कर चुका, अब मेरी मृत्यु मे विलम्ब होने की कोई आवश्यकता नही है।

बहादुरी के साथ मृत्यु का सामना करो, उससे मुँह मोडना कायरता है। तुम नही जानते, वस्तुतः मृत्यु है क्या। तुम तो यही समझते हो कि इससे हमारे दुःखो का अत होता है।

दीर्घ जीवन सुखमय नही है। सुखमय जीवन है वह जिसका अच्छा उपयोग किया गया हो। जिस मनुष्य ने अपने जीवन उचित उपयोग किया उसी को प्रतिष्ठा मिलती है और मरने अनन्तर उसी की आत्मा को सच्ची शाति मिलती है।

ओ३म् ओ३म् ओ३म्